द्वितीय–अध्याय

साहित्य से मनोविज्ञान का सम्बन्ध

मानव–मन मनोविज्ञान के विश्लेषण का विषय केन्द्र है। मन मनोविकारों और अनुभूतियों का कोष है। साहित्य इन्हीं मनोविकारों और अनुभूतियों की कथा है। डा0 राम कुमार वर्मा साहित्य को मानवीय संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति मानते हैं। अतः मनोविज्ञान साहित्य का व्याख्याता है। मनोविज्ञान 'कृति' और 'कृती' दोनों रूपों में साहित्य का अध्येता है। साहित्य सर्जन एक शुद्ध मानसिक प्रक्रिया है। रचना प्रक्रिया बुद्धि पर आधारित होती है। कोई भी रचनात्मक कृति रूपायित होने से पूर्व रचनाकार के मन में विद्यमान होती है। सर रसेल ब्रेन ने 'दी नेचर ऑफ एक्सपीरियेन्सीज' में विश्लेषण देते हुए कहा है कि वैचारिक अनुभूति कलाकृति में रूपान्तरित होने से पहले सर्जक की मानसिक–चेतना का अभिन्न अंग होती है। साहित्यकार रचना–प्रक्रिया में अचेतन से चेतन की ओर उन्मुख होता है।

मनोविश्लेषणवादी फ्रायड के मतानुसार समस्त रचना–प्रक्रिया के मूल में यौनमूलक प्रेरणाएं होती हैं। जो सामाजिक व्यवधान के कारण अतृप्त रह जाती हैं। ये प्रेरणाएं उदात्तीकरण की प्रक्रिया में किसी रचनात्मक कृति के रूप में प्रतिफलित होती हैं। एडलर 'स्वत्वाग्रह' (Self-Assertation) को रचनात्मक प्रेरणा मानते हैं। युंग ने रचनात्मक–ऊर्जा को जीवित शक्ति माना है। यह शक्ति अथवा ऊर्जा कलाकार को उसी तरह संवर्द्धित करती है। जिस प्रकार वृक्ष को पृथ्वी वर्द्धित करती है। फ्रायड ने इसे रहस्यमयी शक्ति कहा है। आचार्य अभिनव गुप्त ने इसे नव–नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा माना है। यह वह शक्ति है जो विश्व को कलात्मकता प्रदान करती है।

साहित्य–सर्जन के साथ उसका आस्वादन भी एक मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। रसास्वादन में पाठक रचना और रचनाकार से तादात्म्यीकृत होकर साधारणीभूत हो जाता है। वह कलात्मक प्रभाव के कारण अपने निजी विचारों–भावों को भूल जाता है। वह आत्म–विस्मृत होकर कला–कृति में तन्मय हो जाता है। इस तन्मयता की अवस्था में वह कलाकृति में पूर्णतः निमज्जित हो जाता है। अतः साहित्य के भाव और विचार लोक के साथ–साथ उसके रसबोध को भी मनोविज्ञान ने बहुत प्रभावित किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से रस स्थायी भाव न होकर अनुभूति की एक ऐसी अवस्था है जो निर्वैयक्तिक और साधारणीकृत होती है। मनोवैज्ञानिक इसे अहं से मुक्त अनुभूति मानते हैं।

डॉ0 रामकुमार वर्मा के मतानुसार साहित्य जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है। जीवन का विकास मनोविकारों पर आधारित होता है। मनोविकारों का आधार मनोविज्ञान है। अतः मनोविज्ञान और साहित्य में साधन और साध्य का सम्बन्ध है। एक साहित्यकार अपनी कृति में भावों की सृष्टि द्वारा भावी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है। जिनके आधार पर जिज्ञासु उनका अंकन करता है। अतः साहित्यकार के साहित्य में मनोविज्ञान का प्रवेश स्वाभाविक है। साहित्य और मनोविज्ञान जीवन की अत्यन्त सन्निकटता के कारण परस्पर समान धर्मी हो गए हैं। साहित्य और मनोविज्ञान दोनों भावात्मक एकता के प्रस्तोता हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सृष्टि के साथ परिष्कृत रागात्मक सम्बन्ध स्थापन को साहित्य के उदात्त रूप की संज्ञा देते हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा साहित्य में मानव–जीवन के परिष्करण तथा उन्नयन को स्वीकारते हैं।

हम कह सकते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा डॉ0 रामकुमार वर्मा की मान्यता फ्रॉयड के 'उदात्तीकरण सिद्धान्त' से समानता रखती है। बेनदेते क्रोचे की अभिव्यक्ति का सिद्धान्त युंग की रचनात्मक शक्ति, कला सर्जक प्रेरणात्मक सिद्धान्त से साम्यता रखती है। डॉ0 नगेन्द्र भी साहित्य को आत्माभिव्यक्ति मानते हैं। मनोविज्ञान साहित्य का आधार फलक और उसके मूल्यांकन का वैज्ञानिक निष्कर्ष है।

साहित्य का वर्तमान युग मनोविज्ञान का युग कहा जाता है। साहित्य का वर्ण्य विषय केवल तिलस्मी, उपदेशपरक, धर्म–प्रचार, भूत–प्रेत, मनोरंजन एवं संयोग–वियोग परक भावों का प्रकटीकरण न होकर जीवन की यथार्थता से जुड़ गया। वर्तमान साहित्य पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि आधुनिक युग में मानव ज्यों–ज्यों विकास करता गया, त्यों–त्यों साहित्यकार भी साहित्य निर्माण में नए–नए प्रयोग करने लगा। वर्तमान युग के साहित्य का सम्पूर्ण ढ़ांचा मनोविज्ञान से प्रभावित हुआ है। वर्तमान उपन्यासों में मार्मिकता सौंदर्य और संवेगों का विश्लेषण हुआ है। अतः मनोविज्ञान उपन्यास के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। हिन्दी उपन्यासों की मौलिक एवं प्रमुख प्रवृत्ति मनोविश्लेषण है। उपन्यास जीवन का चित्रण करता है। मनुष्य के यथार्थ जीवन को समझने के लिए उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में झांकता है। मानव जीवन के मानसिक संघर्ष, ऊहापोह को समझना तथा उसके जीवन के वास्तविक स्वरूप की जानकारी प्राप्त करना मनोविज्ञान का ध्येय है। आधुनिक उपन्यासकारों ने इसी कारण मनुष्य के अन्तःपटल की भीतरी परतों को छूकर सत्य का अन्वेषण किया है। मानव के अन्तर्मन की मूल प्रवृत्तियाँ यथा प्रेम, भय, ईर्ष्या, करुणा आदि तथा मानसिक द्वन्द्वों की क्रिया–प्रतिक्रिया की उपन्यासों में अभिव्यक्ति

होने लगी है। चेतन और अचेतन स्तर में पहुँचकर अन्तर्तम प्रदेश का मन्थन करने का बौद्धिक प्रयास साहित्य में दृष्टिगत होने लगा है। अस्तु साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है।

2%1 &हिन्दी-पंजाबी उपन्यासों में मनोविज्ञान की स्थिति %

बीसवीं शती के प्रारम्भ में द्वन्द्वात्मक, भौतिकवाद और मनोविश्लेषणवाद आदि मूल शक्तियां थीं। इन शक्तियों से भारतीय विचारधारा और चेतना अत्यधिक प्रभावित हुई। इनके प्रभाव से व्यक्ति और समाज के प्रति मानव का दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो गया। मनोविश्लेषण की पद्धति से नारी, पुरुष और उसके प्रतिमानों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इसका प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासकारों पर अधिक पड़ा। पश्चिमी शिक्षा और नव जागरण के फलस्वरूप जिन मनोवैज्ञानिकों का प्रभाव भारतीय चेतनाओं पर पड़ा वे मूलतः फ्रायडवाद, एडलर, युंग और मैक्डूगल आदि हैं।

भारतीय साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के जनक बंकिमचन्द्र हैं। उन्होंने 'रजनी', 'कृष्ण कांतर उइल' और 'विषवृक्ष' उपन्यासों में अन्तर्जीवन और बाह्य जीवन के संघर्ष को दिखाकर दोनों के सामंजस्य का मार्ग निर्देशित किया है। बंकिमचन्द्र के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'घरे बाहरे' और 'चोखरे वाली' में मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित है। 'घरे बाहरे' में बाह्य संघर्ष के साथ मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण हुआ है। उन्होंने बाह्य और आन्तरिक जीवन में सामंजस्य स्थापित किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के मनोविश्लेषण का प्रभाव जैनेन्द्र के उपन्यासों पर भी पड़ा है। जैनेन्द्र ने औपन्यासिक पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति कर मनोवैज्ञानिकता को बल दिया है। बीसवीं शती के हिन्दी उपन्यासकारों में सर्वप्रथम जैनेन्द्र पर मनोविज्ञान का

प्रभाव परिलक्षित होता है। व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व को उपन्यासों का मूल आधार बनाकर अन्तर्मुखी पात्रों का वर्णन किया है। उनके पात्रों में कुंठा, दमन, असामान्यतः कामोन्माद आदि मनोविकृतियों की विशेषताएं फ्रायडवाद के काम–सिद्धान्त के अनुरूप देखी जा सकती हैं। उनके पात्र मानसिक रहस्यों को खोलते हैं और उलझनों को सुलझाने की कोशिश करते हैं। उनकी रचना व्यक्ति की रचना है। उनके पात्रों की मनोभूमि रहस्यमय है। जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्र आत्मसमर्पण में ही संतुष्टि पाते हैं। उनके नारी–पात्र हृदय और श्रद्धा के प्रतीक हैं। उनके उपन्यासों की नारियां एक की धर्मपत्नी और दूसरे की प्रिया बनती हैं। जैनेन्द्र के विचार में ''बुद्धि भरमाती है और श्रद्धा को खाती है। वह द्वैत पर चलती है। इसलिए उनके साहित्य का व्यावहारिक रूप चराचर जगत के प्रति प्रेम अनुकम्पा यानी अहिंसा है और उसकी नींव अखण्ड और अद्वैत सत्य से डाली गई है।''[1] जैनेन्द्र के पात्र चेतन स्तर पर करना तो कुछ चाहते हैं किन्तु अचेतन में दमित–संवेगों की प्रेरणा से वे कुछ दूसरा ही कर देते हैं। वे नवीनता के मोह में प्राचीन आदर्शों को नकारते हैं। नैतिक द्वन्द्व के कारण उनके पात्र अभावग्रस्त रहते हैं। उनके उपन्यास ''परख में बुद्धि और अन्तस का संघर्ष, 'सुनीता' में काम–कुंठाओं का दार्शनिक आचरण 'सुखदा', 'विवर्त' और 'व्यतीत' में कुंठाओं से उत्पन्न वैचारिक एवं आचरणिक असंगतियों का वर्णन है।''[2]

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास व्यक्ति अहंभाव पर आधारित हैं। व्यक्ति अपने सामाजिक असमायोजन से बौखला कर अपने सम्पर्क में आने वालों का दमन करता है। उसकी दमनात्मक प्रवृत्ति की शिकार नारियां भी होती हैं। मानव की अहम् भावना के कारण उसके अन्तस में संवेगों में संघर्ष होता है। इसी संघर्ष से तनाव,

विषाद, घृणा, मनोविकार आदि उत्पन्न होते हैं। जोशी के उपन्यासों पर फ्रॉयड, युंग और एडलर के मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित है। ''संसार की कोई भी श्रेष्ठ साहित्यिक कृति चाहे वह किसी भी युग की हो, मानव मन के गहन और सूक्ष्म रहस्य चक्रों से अपरिचित रह ही कैसे सकती है? उसकी श्रेष्ठता और विशेषता ही इस मूल तथ्य पर निर्भर करती है कि वह मानव के इस गहन–जाल जटिल मन की अगाध रहस्यमयता के भीतर डूबकर वहाँ से जीवन के मूल संचालक तत्वों की खोज और छानबीन करके जगत की महान समस्याओं को रसात्मक रूप में सामने रखती है और उनके सुलझाव के सुझाव भी अपने दृष्टिकोण से आभास रूप में दे देती है।''[3] फ्रायड के मतानुसार मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और ऊहापोह उसके दमित काम के कारण ही होता है। उसका मूल कारण काम–प्रवृत्ति ही है। मानव के स्वभाव में जितनी भी विकृतियाँ आती हैं उन सबका मूल कारण कामुकता ही है। यही काम–प्रवृत्ति साहित्य अथवा कला के रूप में उदातीकृत होती है। ''प्रेम से सम्बन्धित जितनी भी स्वरोधी, विरोधी अथवा अवरोधी भावनाएं हैं उनकी सबकी मंथन–क्रिया युग–युग से इसी अन्तश्चेतना में चला करती है और फलस्वरूप प्रतियुग में साहित्यिक स्वरूपों, शैलियों, विचारों और आदर्शों के नये–नये परिवर्तित रूप देखने में आते हैं। किसी भी युग में कोई भी साहित्यिक कृति अपनी गहरी छाप जमाने में समर्थ होती है, उसके सम्बन्ध में उतना निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि उसकी उत्पत्ति मूलतः प्रेम अथवा तज्जनित प्रतिक्रिया से हुई है।''[4] इलाचन्द्र जोशी के मतानुसार व्यक्ति के अन्तर्जीवन का निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। बींसवी शती की नारी–गृहणी पद की सीमा को पार कर राजनीति, धर्म, देश, समाज आदि के प्रति उत्तरदायित्वों को समझने लगी है।

प्रेमचन्द्र से लेकर जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी आदि की नारी रूढ़िवादी सामाजिक मान्यताओं को ठुकरा देती है तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी निभाती है। वह पति से तिरष्कृत होने पर उससे क्षमायाचना कर गिड़गिड़ाती नहीं और न ही उसके चरणों की पूजा कर उसे पति परमेश्वर मानती है। वह पति के दोषों का विद्रोह भी करती है और उसकी आलोचना भी करती है। ''उसके भीतर निकट भविष्य में जो विस्फोट होगा। वह उसकी युग–युग से पीड़ित आत्मा के प्रचंड विद्रोह की सामूहिक घोषणा करेगा। यही कारण है कि धीरे–धीरे वर्तमान युग की बुद्धिवादिनी नारी का दृष्टिकोण यथार्थवादी बनता चला जा रहा है, अर्थात् वह शरत युग की नारी की तरह भावुकता के फेर में पड़कर अहंवादी पुरुष की इच्छा के बहाव में पूर्णतया बहना और मिटा देना पसन्द नहीं करती, बल्कि स्थिति की वास्तविकता को समझकर व्यक्ति और समाज के अत्याचारों का सामना पूरी शक्ति से करने योग्य अपने को बनाने की चेष्टा में जुट रही है। सामाजिक पर्दे के भीतर छिपे हुए इसी सत्य का उद्‌घाटन मनोवैज्ञानिक उपायों से करने का प्रयास मैंने किया है।''[5]

अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में मनोविज्ञान का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शेखर के जीवन का किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक का विकास मनोविज्ञानपरक है। शेखर के अतीत काल के प्रत्यावलोकन से उसका सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। शेखर स्वेच्छापूर्ण जीवन जीने में विश्वास रखता है। वह प्रकृति के सम्पर्क में रहकर सब कुछ सीखता है। तोते से वह स्वतंत्र रहने की कला सीखता है, गोमती तट की संध्या उसे सौंदर्य बोध सीखाती है। अश्व की तीव्रगति से वह लय की शिक्षा लेता है। जिज्ञासु शेखर समाज को परम्परा के चश्मे से नहीं अपितु खुले

चक्षुओं और सहज ज्ञान से निरीक्षण कर, उसका मूल्यांकन करता है। शेखर का यह प्रबुद्ध अहम् राग–प्रसार लोकमंगल की ओर उन्मुख न होकर आत्मकेन्द्रित हो जाता है। इसी अहम्–भावना के कारण वह सामाजिक समायोजन करने में असमर्थ है। ''शेखर के स्वभाव की मूल प्रवृत्ति है अहंभाव। उसका विकास एकांगीय होने के कारण समाजघाती ही नहीं बल्कि आत्मघाती भी हुआ है।''[6] अज्ञेय के उपन्यासों के पात्र स्वभावानुकूल चलते हैं। वे सामाजिक बंधन में बंधना नहीं चाहते। 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में एक अतिशय आत्म केन्द्रित और अहम् प्रमुख कलाकार की झांकी मिलती है। इसी कारण अज्ञेय की कृतियां प्रमुखतः सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में न आकर व्यक्तिवादी उपन्यास ही कहला सकती हैं।''[7] अज्ञेय ने रेखा और भुवन द्वारा मनोविश्लेषण के आधार पर अंतर्मन की स्पंदित भूमि एवं सूक्ष्मतम संवेदना को उभारा है। भुवन और शेखर अपनी अहं प्रवृत्ति से उन्मुक्त नहीं हो पाते। अज्ञेय के पात्र कामुकता के शिकार हैं। वह टी0एस0 इलियट के प्रभाव से प्रभावित हैं। इसलिए आलोचक इनके पात्रों को असामाजिक मानते हैं। अश्क के शब्दों में ''अज्ञेय के पात्र क्षणों में जीते हैं, उनके लिए नर–नारी का यौनाकर्षण केवल क्षणों की अनुभूति है, जीवन का एक व्यापक सत्य नहीं।''[8] अज्ञेय सब पात्रों में कला देखते हैं। त्रिशंकु में उन्होंने कहा है कि ''सच्ची कला कभी भी अनैतिक नहीं हो सकती और यों भी कह सकते हैं कि प्रत्येक शुद्ध कला–चेष्टा में अनिवार्य रूप से एक नैतिक उद्देश्य निहित है अथवा सच्ची कलावस्तु अन्ततः एक नैतिक मान्यता (Ethical Value) पर आश्रित है, एक नैतिक मूल्य रखती है।''[9]

आधुनिक मनोविज्ञान ने चेतन और अचेतन का जो कार्य दिखाया है। वह मानव को एक नई संवेदना की शक्ति देता है। अज्ञेय के कथानानुसार ''शरीर और बुद्धि के विकास के बाद तीसरा स्तर चेतना का होगा जो हमारे जीवन में क्रियाशील होगा। यह चेतना शक्ति हमारे जीवन में सम्पूर्ण विजय के अनुरूप होगी, जब मानव स्वयं उसमें योग देगा। इस योग के कारण चेतन और अवचेतन के अवरोध या अन्तराल मिट जायेंगे। चेतन और अवचेतन के संघर्ष का दमन करने वाली हमारी आत्मिक शक्ति रचनात्मक कार्य करने में उपलब्ध होगी। नई अन्तर्दृष्टि पाकर हम सत्य के निकटतर आ सकेंगे; तत्व चिन्तन ही नहीं, प्रत्यक्ष तत्वज्ञान भी प्राप्त करेंगे..... और हम काम–वासना के चुंगल से निकल सकेंगे। शायद वेदना की अनुभूति से ऊपर उठ सकेंगे और निस्संदेह मानवीय सम्बन्धों और व्यापारों के लिए कोई अहिंसा–मूलक आधार ढूँढ निकालेंगे। .....प्रत्येक महत्वपूर्ण लेखक अग्निगर्भ होता है; बुद्ध के बोधिसत्व होते हैं, तो महान लेखकों को भी अनिवार्य रूप से विद्रोहसत्व होना चाहिए।''[10] अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र शेखर, भुवन, शशि, रेखा अपने जीवन में व्यक्तिगत विद्रोह करते हैं। इसी विद्रोह में वह जीवन का मनोविश्लेषण करके संसार की उपेक्षा करके असामाजिक बन जाते हैं। उनका यह विद्रोह अहम्कारी है। वे इस अहम् से मुक्त नहीं हो पाते।

यशपाल 'कार्ल मार्क्स' और 'फ्रायड' दोनों से प्रभावित हैं। इनके उपन्यास 'मार्क्सवाद' की आर्थिकता और 'फ्रायड' की काम–प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं। उपेन्द्र अश्क के सभी पात्र पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक एवं काम कुंठा पर केन्द्रित हैं। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में पाप–पुण्य की व्यक्तिवादी व्याख्या में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को परखने की सूक्ष्मदर्शिता है।

बीसवीं शती के हिन्दी उपन्यासकारों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ''भावुकता से बौद्धिकता, भावुक सहृदयता से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, परम्परा से प्रगति, समाज से व्यक्ति और परिस्थिति से प्रवृत्ति की दिशा में विकास का क्रम है। समाज और जीवन की झांकी प्रस्तुत करने वाले उपन्यास में इस निरन्तर विकास के साथ नवीन क्षमताओं का उदय हुआ। तिलिस्म और जासूसी कथाएं एकदम खत्म हो गईं, लेकिन उपन्यासकार ने मानव–मन के पट खोलकर तहें की तहें उभारकर जासूसों की तरह सूत्र से सत्य तक पहुँचने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लिया। फ्रायड, एडलर, युंग के सिद्धान्तों क्राफ्ट एबिंग और हैवलाक रूलिस की धारणाओं और लारेंस के साहित्य ने हिन्दी उपन्यास को नई दिशा, नया क्षितिज प्रदान किया है। अवचेतन मन की धारा स्वप्नवाद, एडीपस–काम्प्लेक्स आदि के अध्ययन से हिन्दी उपन्यासकार को मानव मन की गति शोधने के नए साधन प्रदान कर दिए और चरित्र–चित्रण को नया अर्थ दे दिया। यद्यपि जैनेन्द्र कुमार ने इस आरोप को सदा अस्वीकार किया है कि फ्रायड ने उन्हें प्रभावित किया है, उनकी ईमानदारी को उनके द्वारा व्यक्त मूल्य पर ग्रहण करने के बाद भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकेगा कि चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में हिन्दी के उपन्यासकारों ने पश्चिम की नवीनतम उद्भावनाओं से प्रेरणा प्राप्त की है।''[11]

पंजाबी साहित्य में डॉ0 चरन सिंह को डॉ0 तारन सिंह, पहला उपन्यासकार मानते हैं। उनके दो उपन्यास 'जंग मड़ोली' और 'शाम सुन्दर' (अपूर्ण) बनीयन के उपन्यास (Bunyan's pilgrims' progress) के प्रभाव से परिलक्षित हैं। 'जंग मड़ोली' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें मन को वशीभूत करने की रणनीति का प्रयोग

किया गया है। यह उपन्यास मनोविज्ञान के साथ–साथ उपदेशात्मक भी है। भाई वीर सिंह के 'सुन्दरी' (1897 ई0), 'विजय सिंह', 'सतवन्त कौर', उपन्यासों के पात्र वीर रस की मानसिकता से ओत–प्रोत हैं। बाबा नोध सिंह उपन्यास में पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता का द्वन्द्वात्मक चित्रण है।

भाई मोहनसिंह के इक सिख घराना, सुखी परिवार, सुशील विधवा, सुभाग कौर, दम्पत्ति प्यार, वकील दी किस्मत, सुखदेव कौर आदि उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों का खुलकर विरोध किया गया है। सामाजिक पाखंडों का संघर्ष ही मनोविज्ञान की प्रारम्भिकावस्था का सूचक हैं। यही से पंजाबी उपन्यासों में मनोविज्ञान का बीजारोपण हुआ है। नानक सिंह, सुरिन्दर सिंह नरूला, सन्त सिंह शेखो, जसवन्त सिंह आदि ने मनोवैज्ञानिक धारा अपनाई। सुरिन्दर सिंह नरूला के उपन्यासों में फ्रायडवादी मानसिकता और लिबिडो का प्रभाव परिलक्षित है।

2%2&**स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी-पंजाबी उपन्यासों में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण** %

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक असंतोष और क्षोभ की परतें सघन हो गई थीं। व्यक्ति का मनोबल दुर्बल हो गया था, मानवीय मूल्यों, सदाचार के तत्वों तथा सामाजिक आचरण का ह्रास हो गया था। इसका प्रभाव नारी पर भी पड़ा। नारी जीवन की सहयोगिनी और प्रेरणा की जगह आदर्शवादिनी एवं अंकशायिनी बनकर रह गई थी। प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यासों में नारी–सौंदर्य की अभिव्यक्ति अधिक हुई। लाला श्री निवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' हिन्दी साहित्य का प्रथम मौलिक उपन्यास है। इसमें सुशीला मदनमोहन की पत्नी है। वह कुपथगामी पति का अवरोधन कर धैर्यता

से दुःखों का सामना करती है। श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत भाग्यवती परम्परागत, आदर्श नारी है। किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'चपला' की मालती, 'अँगूठी का नगीना' की योगमाया 'त्रिवेणी' की त्रिवेणी ''पूवर्जन्म एवं सौतिया डाह' की सुशीला, बाबा जयराम दास कृत 'लक्ष्मी देवी' की नायिका लक्ष्मीदेवी सुशिक्षित एवं डाक्टर नायिका होकर भी नारीत्व गुणों से सम्पन्न है। इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी के आन्तरिक उद्‌घाटन की अभिव्यक्ति की उपेक्षा की है इनके उपन्यासों में नारी पात्रों के चरित्र–निर्माण में मानवीय संवेगों की न्यूनता दिखाई देती है। प्रेमचंद पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान अछूता ही रहा। मनोविज्ञान का परिवेश अन्तर्जगत है, जहाँ पहुँचकर ही मानसिक कुंठाओं का मनोविश्लेषण किया जाता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी का भी सतही रूप कुछ उपन्यासों में चित्रित प्राप्त हो जाता है। ''भाग्यवती' में भाग्यवती के संघर्ष एवं मानसिक परिवर्तन तथा 'पुनर्जन्म एवं सौतिया डाह' में सुशीला के परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का हल्का स्पर्श प्राप्त होता है।''[12] इस काल के उपन्यासकारों ने नारी की मानसिकता का मनोविश्लेषण नहीं किया है। ''नारी–पात्रों का तनिक भी मनोवैज्ञानिक चित्रण इन उपन्यासों में नहीं हुआ है। विकास एवं मानसिक द्वन्द्व के अभाव में ये पात्र अनावृत्त अथवा अंशतः आवृत्त प्रस्तर–प्रतिमाएं बनकर रह गए हैं। प्रायः श्वेता का श्वेता रूप या श्यामा का श्यामा–रूप ही इनमें उपलब्ध होता है।''[13]

अस्तु प्रेमचन्द पूर्व सभी उपन्यासकारों ने नारी की उपेक्षा कर, पुरुष–पात्रों के माध्यम से युग–बोध को प्रकाशित किया है। नारी–पात्र केवल औपन्यासिक मनोरंजन की वस्तु बनकर रह गए हैं। इस प्रकार पुरुष पात्रों की कतार में नारियां

अकिंचन बन गईं। नारी के इस अविकसित और दयनीय रूप को समझने के लिए हमें अतीत की ओर गमन करना होगा। इस काल में प्रधानत, दो प्रकार की नारियां मिलती हैं। सनातन भावना से प्रभावित नारियां और मध्ययुगीन भोगवाद से प्रभावित नारियां।

2:2.1 सनातन नारी भावना एवं उससे प्रभावित नारियाँ :

हिन्दी उपन्यासों का जन्म पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुआ है। अतः प्रारम्भिक उपन्यासों में पौरस्त्य और पाश्चात्य का प्रभाव परिलक्षित है। इन पर एक ओर सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसलिए इस काल की नारियों का बाह्य स्वरूप प्राचीनता की गरिमा ओढ़े है, तो उनका आन्तरिक आधुनिकता के झंझावत से आलोड़ित है। अतः इस काल की नारियां न तो सनातन भावनाओं को सम्पूर्णता से आत्मसात कर सकीं और न मानवीय कुंठाओं को ही प्रकट कर सकीं। ''इस काल में ऐसी नारियां मिलती हैं। जिनका आचरण सीता और सावित्री की पावनता से आरोपित है। ऐसे आरोपों के कारण नारियों का चरित्र अविश्वसनीय बन गया है। इसलिए किसी–किसी आलोचक को इन नारियों के चरित्र में सनातनधर्मी विचार–धारा का विरोध दिखलाई पड़ता है।''[14]

हमारा अतीत नारियों के यश से मंडित है। पुत्रों के समान पुत्रियों को भी सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। नारियों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य प्राप्त था। माँ सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री मानी गई। माँ दुर्गा सामाजिक मर्यादाओं की रक्षिका, शकुन्तला आदर्श की नियामिका तथा सीता परम्परा की पोषिका मानी गई। ऐसी नारियां हमारे अतीत के धवल नक्षत्र हैं। इनसे हमारी संस्कृति और मानवीय आचार–विचार सुरक्षित एवं संरक्षित हैं।

ऋग्वेद नारी–स्वातंत्र्य और उसके अधिकारों के प्रति अधिक उदार है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी प्रवेश का स्वागत किया गया है। नारी को युद्धस्थल से लेकर प्रेम और विवाह तक की स्वतंत्रता प्राप्त थी। वैदिक काल में नारी का स्थान सर्वोच्च था। उन्हें समानाधिकार प्राप्त था। घोषा, मैत्रेयी, गार्गी, इन्द्राणी, अनुसूया आदि एक ही साथ दार्शनिक आचार्य, चिकित्सक विदुषी तथा नृत्य–गान–विद्या में निष्णात थीं। वेदों के मंत्रों में नारियों के कई मंत्र हैं। पर्दा–प्रथा का नामोनिशान नहीं था। स्त्री रूप में नारी घर की साम्राज्ञी थी। पति के समान ही उसे भी धार्मिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। वह पर्दे के भीतर कैद नहीं थी। उसे घूमने फिरने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कुछ नारियां तो युद्ध–कौशल में पारंगत थी और पति के साथ वह रण–क्षेत्र में अपने कौशल से पुरुषों से लोहा लेती थीं। इन सम्पूर्ण अधिकारों की स्वतंत्रता होते हुए भी वैदिक कालीन नारियां अनुशासित एवं सामाजिक मर्यादा में रहती थीं।

वैदिक काल के पश्चात सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुआ, जिसका प्रभाव नारी की सामाजिक एवं सनातन गरिमा पर भी पड़ा। उनका उदात्त और गरिमामय रूप पुरुषों के घेरे में बन्दी बना दिया गया। गौतम बुद्ध ने भी अपने संघ में नारियों का प्रवेश वर्जित कर दिया था। गुप्त काल में नारी की स्थिति अधिक दयनीय हो गई। उनकी सम्पूर्ण स्वतंत्रता पुरुषों के अधिकारों में समाहित हो गई। सभी सम्प्रदायों ने नारी को तिरष्कृत किया। विभिन्न सम्प्रदायों के भक्तों को नारी के शारीरिक तनाव और मानसिक लचीलेपन ने प्रभावित किया। बौद्ध धर्म में व्यभिचार पराकाष्ठा की सीमा तक पहुँच गया।

बाराहमिहिर जैसे सुधारवादी विचारकों ने नारी के उज्ज्वल रूप को प्रस्तुत किया। ''इस युग में बाराहमिहिर ही एक मात्र ऐसे चिन्तक हुए जिन्होंने नारी–निन्दक उन वैरागियों को फटकारा, जो स्वयं अपनी इन्द्रियों के दास होकर अपने पाप के लिए नारियों को निन्दित समझते थे। किन्तु उनका प्रबल विरोध अरण्यरोदन सिद्ध हुआ।''[15] जहाँ तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों ने नारी के धवल और भव्य रूप को कलंकित किया। वहीं सनातन नारियों की अधिष्ठात्री देवी के रूप की पूजा हुई। महिला कुल के इसी सतीत्व को दिव्य प्रभा के रूप में देखा गया और इसके कारण भारतवर्ष को सम्पूर्ण भूमंडल में आदर्श गुरू के रूप में सम्मानित किया गया। परम्परागत नारियों का बाह्याचरण सनातनी है। उनके आन्तरिक द्वन्द्व को प्रकाशित नहीं किया गया है। उनका चरित्र आदर्श और नैतिकता के बोझ से बोझिल हो गया है। 'परीक्षा गुरु' के नायक मदनमोहन की पत्नी सुशीला सती सावित्री और आदर्शवान नारी का प्रतीक है। वह पति के अनैतिक व्यवहार पर आक्रोशित नहीं होती अपितु वह पति को देवता मानकर पूजा करती है। उसकी यह पावनता और नैतिकता मनः प्रसूत न होकर आरोपित है। श्री कार्तिक प्रसाद कृत 'दलित कुसुम' की नायिका भारतीय संस्कारों से दबी हुई है। परिणामतः उसका चारित्रिक विकास अवरूद्ध हो गया है। 'कनककुसुम' की काशीबाई पति की प्रसन्नता हेतु, सहर्ष सौत मस्तानी का हाथ, पति को सौंप देती है। 'आदर्श बाला' की नायिका लवंगलता अपने सतीत्व की रक्षा करने में सक्षम हो जाती है। 'सौतिया डाह' की सुन्दरी सुशील तथा भाग्यवादिनी है। वह सौत सुशीला के कुटिल कार्यों को अनदेखा कर, पति के पावन–प्रेम सम्बन्धों की दृढ़ता में विश्वास रखती है।

'लाल चीन' की लुत्फुन्निसा अपने, त्याग और आदर्श के कारण महान बन गई है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' की देव बाला एक आदर्श नारी है। वह रमानाथ के दुष्कर्मों को विस्मृत कर, अनुपम त्याग का परिचय देती है। ''देवबाला आदर्श भारतीय नारी है, उसमें भारतीय नारीत्व के सभी गुण कूट–कूटकर भरे हुए हैं। उसमें अनुपम त्याग, सहनशीलता, दयाशीलता एवं क्षमाशीलता के गुण वर्तमान हैं। उसमें प्रेम का सत् एवं उज्जवल पक्ष मूर्त हुआ है।''[16] इन गुणों के प्रदर्शन में उसके असफल प्रेमोच्छवास की कसक का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उसका प्रेम सामाजिक मर्यादाओं की बलि चढ़ा दिया जाता है। 'मालती' की नायिका आदर्श की रक्षार्थ जीवन–बलिदान कर देती है। परन्तु वह अपने कुंठित रति–संवेग की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है।

प्रायः सभी उपन्यासकारों ने नारी–पात्रों को नैतिक आदर्श परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति समर्पित दिखाकर, उनके मानवीय मूल्यों का हनन किया है। सभी उपन्यासकार सुधार और आदर्श के उपासक हैं। केवल सुधार और आदर्श के लिए ही नारी–पात्रों का निर्माण हुआ है। युग–बोध पुरुष–पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इस काल की नारी–भावना मध्यकाल की नारी भावना से भिन्न है। रीतिकालीन नारी–चित्रण में श्रृंगार और वासना प्रवृत्ति की प्रमुखता है। ''प्रेम की स्वच्छन्दता सभी प्रेमिकाएं चाहती हैं; सामाजिक रूढ़ियों के प्रति इनकी प्रेम–भावना में असंतोषजन्य काम–कुंठाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। विवाहित पुरुष के प्रेम, अजातीय तथा रीतिहीन विवाह एवं अस्वस्थ काम–चेष्टाओं ने मिलकर इनके विकास के सभी मार्ग बन्द कर दिए हैं। अतः कोई अस्वाभाविक नहीं है। इनमें वैविध्य नहीं है और इनका प्रेम दो शरीरों तक ही परिसीमित रहा है।''[17]

2%2-2 **मध्य युगीन भोगवाद से प्रभावित नारियां :**

मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन से नारी जीवन में अत्यधिक परिवर्तन हुए इस काल में पुत्री को समाज का अभिशाप समझा जाता था। अमीर खुसरो ने अपनी पुत्री के जन्म पर अत्यन्त खेद प्रकट किया था। मुगल प्रभाव के कारण नारी पुरुष की छाया बनकर रह गई। पर्दा–प्रथा जैसी कुप्रथा का आरम्भ हुआ। पर्दा–प्रथा का प्रमुख कारण था कि मुगल शासक रूपवती नारियों का बलपूर्वक सतीत्व भंग करते थे। मुसलमानों की कुप्रवृत्ति के कारण बाल–विवाह प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया। विवश होकर हिन्दुओं ने अपनी बेटियों का बाल–विवाह करना प्रारम्भ कर दिया। विधवाओं का पुनर्विवाह अवैध माना गया। विधवाओं के सारे सामाजिक अधिकार छीन लिए गए। पर्दा–प्रथा के कारण नारियों के विकास के मार्ग अवरूद्ध हो गए।

मुसलमानों की कामुक–प्रवृत्ति के कारण बहुपत्नीत्व–प्रथा का प्रचलन हुआ। इस समय वेश्या–वृत्ति का प्रचलन भी प्रबल हुआ। मुगल बादशाह अकबर और औरंगजेब के हरम में कई नव–यौवनाओं की व्यवस्था थी। हरम की व्यवस्था राजमहल से दूर होती थी। हरम की औरतों को पढ़ने के लिए अश्लील पुस्तकों का प्रबन्ध होता था। जिससे उनमें कुत्सित–प्रवृत्ति पनपती रहे। उस काल का सम्पूर्ण वातावरण भोगवादी था। इस भोग–प्रधान वातावरण का प्रभाव जनमानस पर भी पड़ा। फलस्वरूप नारियों के प्रति वासनात्मक दृष्टिकोण ने जन्म लिया। सुरा–सुन्दरी जीवन के आवश्यक उपादान माने जाने लगे। इस सामाजिक कुप्रथा का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। क्योंकि ''साहित्य युगबोध से प्रेरित होता है। युगबोध की उपेक्षा कर साहित्य अपनी अमरता खो बैठता है। इसलिए राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं

आर्थिक कारणों से समाज में जो अवस्था नारी की होती है प्रायः उसी का प्रतिबिम्ब कवि की भावना होती है।'' सूर की राधा रीतिकालीन कवियों की यौवन–कलश छलकाने वाली लौकिक नायिका बन गई। अस्तु तत्कालीन कवियों ने उसका श्रृंगारिक वर्णन कर समाज में वासना–वृत्ति को विकसित किया। मुस्लिम कालीन नारी की प्रगति के सम्पूर्ण विकास–मार्ग अवरूद्ध हो गए।

मध्ययुगीन उपन्यासकारों ने भोगवादी स्थिति को उद्घाटित नहीं किया है। लेकिन मध्ययुगीन नारी का, यौन–भावना, चुम्बन, उन्मुक्त आलिंगन आदि भावों के प्रति आकर्षण है। मनोरंजन प्रवृत्ति के कारण रीतिकालीन श्रृंगारिक चेष्टाएं परिष्कृत रूप में उपन्यासों में प्रस्फुटित हुई हैं, ''किन्तु उस उद्दाम ऐन्द्रिय भावना से सम्पूर्ण रीतिकालीन काव्य ग्रस्त था, उसकी छाया यहाँ भी पड़ती है। गोस्वामी जी के 'प्रेम चित्र' उद्दाम लालसा का स्पंदन लिए रहते हैं, इनमें प्रेम के स्थान पर विकट इन्द्रिय–लिप्सा अभिव्यक्त हुई है।''[18] 'आदर्श रमणी' की कुसुम कुमारी आदर्शवादी नारी होने पर भी रीतिकालीन प्रभावों से अछूती नहीं रह पाई। नायक के आलिंगन में बँधकर वह आचार–संहिता का उल्लंघन करती दिखाई देती है। 'लक्ष्मी देवी' की श्यामा विवाह का तात्पर्य भोग ही समझती है। इसलिए वह मर्द को वस्त्र के समान बदलने की वस्तु मानती है। उसके जीवन में मोती, विश्वेश्वर और किरानी आदि पुरुषों का संसर्ग होता है। 'तारा' की जहान आरा और रोशन आरा भोग–पसंद दो शहजादियां हैं। उनके शस्त्र कामुक चेष्टाएं हैं। उनका अभिलाषा–तीर नानाविध कामुक कटाक्ष हैं। उनकी पूंजी संभोग है। दोनों ही ईर्ष्या, तृष्णा, अतृप्ति वासनात्मक–अभिलाषा से परिपूर्ण हैं। उनके लिए पुरुष मनोरंजन के साधन मात्र हैं।

दोनों शहजादियां महलों की राजकुमारियों की सामान्य प्रतिनिधि हैं। 'डबल बीबी' की चमेली एक महत्वाकांक्षी–प्रणयिनी है। वह रूप–सौंदर्य को सबसे बहुमूल्य समझती है। वह शारीरिक स्वच्छन्दता हेतु पति को कुछ खिलाकर विक्षिप्त कर देती है। माधवी–माधव की यमुना, झूलिया और सरस्वती देह–व्यापार करने वाली युवतियां हैं। 'अधखिला फूल' की वासमती कामुकता से ओत–प्रोत है। 'किरण शशि' की सुकेशी प्रणय–सुख की प्राप्ति ही जीवन का साध्य मानती है। इस प्रकार नवीन भाव–बोध से प्रभावित हो श्यामा, चमेली, यमुना, वासमती, सुकेशी आदि नारियां मध्ययुगीन भोगवाद की देन हैं।

स्वतंत्रतापूर्व पंजाबी साहित्य में भाई वीर सिंह ने ऐतिहासिक उपन्यास 'सुन्दरी', 'विजय सिंह', 'सतवन्त कौर' लिखे। भाई वीर सिंह के समकालीन उपन्यासकार भाई मोहन सिंह वैद ने तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक लहरों से प्रभावित होकर कुछ मौलिक और अनुवादित उपन्यास लिखे। इक सिख घराना, सुखी परिवार, सरेसर कुल की चाल, सुशील विधवा, शुभा कौर, दम्पत्ति प्यार, सुघड़ कौर, वकील दी किस्मत, सुखदेव कौर आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उन्होंने धार्मिक और सदाचारक समस्याओं को प्रस्तुत करते पाश्चात्य–सभ्यता की अपेक्षा पूर्वी सभ्यता को श्रेष्ठ दर्शाया है। चरन सिंह शहीद ने दलेर कौर, रणजीत सिंह, सराब कौर (ऐतिहासिक), चंचलमूरती, दो वहुटीआं (समाज सुधारक) उपन्यास लिखे। नानक सिंह ने लगभग साढ़े तीन दर्जन उपन्यास लिखकर पंजाबी उपन्यास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके उपन्यास मत्रेई मां, काल चक्कर, मिट्ठा महुरा, प्रेम संगीत, चिट्टा लहू, प्यार दी दुनिया, धुंधले परछावें, लव मैरिज, गरीब दी दुनिया, अधखिड़िआ फुल्ल, पवित्तर पापी, जीवन संग्राम आदि हैं। इनके उपन्यासों में भ्रष्टाचार, छुआ–छूत घूसखोरी आदि समसयाओं का वर्णन है।

स्वतन्त्रतापूर्व पंजाबी उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान अभी नवजात शिशु की भांति नयन खोल रहा था। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'सच्च नू फांसी' (1945) की नायिका दलीप की ट्रेन में नायक कंवर से मुलाकात होती है। कंवर, दलीप कौर के गृह जाता है। दलीप के पिता कंवर से प्रभावित होते हैं। वह दलीप और कंवर का परिणय करना चाहते हैं। परन्तु दलीप का भाई सरवन इसके विरूद्ध होता है। सरवन नशे में कंवर पर गोली चलाता है। गोली सरवन के पिता को लगती है। सरवन रिश्वत देकर कंवर को कातिल बना देता है। कंवर को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया जाता है। दलीप का नारी मन विरह में व्याकुल हो उठता है। उसके मनोभावों को उपन्यासकार ने बड़ी ही मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। वह मानसिक ऊहापोह में कंवर से जेल में मुलाकात भी करती है। फ्रायड काम वृत्ति की तृप्ति हेतु दलीप कंवर से रति–क्रीडा कर एक पुत्र रत्न को जन्म देती है। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'पाली' (1946) की नायिका प्रितपाल पति द्वारा प्रताड़ित नारी है। वह स्व काम–कुंठा की पूर्ति हेतु नूतन मार्ग अपनाती है। वह नर्स की ट्रेनिंग लेकर, समाज सेविका बन, अपनी काम–प्रवृत्ति का उदात्तीकरण करती है। ट्रेनिंग के समय, पाली की स्टेशन पर, एक फौजी बलवीर से मुलाकात होती है। बलवीर और पाली दोनों ही प्रणय–भाव विभोर हो उठते हैं। उनके प्रणय–प्रसंग की चर्चा सर्वत्र होती है। पाली बलवीर के घर भी जाती है। बलवीर युद्ध में घायल हो जाता है। पाली का पति प्यारा सिंह बलवीर के प्राण बचाकर उसे अस्पताल में पहुँचाता है। उसी अस्पताल में पाली नर्स है। पाली की सेवा–सुश्रूषा से बलवीर स्वस्थ हो जाता है। पाली का बलवीर के प्रति आकर्षण, उसका सानिध्य, उससे रति–संवेगों का संचरण नारी–मनोविज्ञान को दर्शाने

में सहायक सिद्ध होते हैं। करतार सिंह दुग्गल के उपन्यास 'इक दिल बिकाऊ है' में मुस्लिम नर्तकी की सुन्दर कन्या की मानसिक–व्यथा का दुखान्तमयी वर्णन है। उसके मन में घुमड़ते निःशब्दों का मानसिक झंझावत पाठकों को द्रवित करता है। सुरजीत सिंह सेठी के उपन्यास 'इक खाली प्याला' में नवयुवती के मन का सजीव मनोविश्लेषण किया गया है। 'कल वी सूरज चढ़ेगा' में जलियां वाले बाग के हत्याकांड में कुंठित रूप और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण किया गया है।

पंजाबी उपन्यास–साहित्य में भाई वीर सिंह ने 'सुन्दरी' उपन्यास में सनातनी नारी को चित्रित किया है। 'सतवन्त कौर' एक आदर्शवादी नायिका है। भाई मोहन सिंह ने 'सुशील विधवा में, ये एक कुलीन विधवा के सदाचारक जीवन का सुन्दर चित्रांकन किया है। 'दम्पत्ति प्यार' और सुखदेव कौर में उन्होंने पाश्चात्य–सभ्यता की तुलना में भारतीय सभ्यता और आदर्श सनातनी नारी को श्रेष्ठतम बताया है। अमर सिंह के उपन्यास 'छोटी नूंह' और 'प्रेम कौर' में नारी के परम्परागत रूप को उद्घाटित किया गया है। गुरबख्श सिंह ने 'शकुन्तला' उपन्यास में नारी की शारीरिक सुन्दरता के साथ मानसिक सुन्दरता की भी अभिव्यक्ति की है। गुरबख्श सिंह प्रीत लड़ी के 'अणविआही माँ' में माँ की ममता की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। नानक सिंह के उपन्यासों में नारी–पात्र, पुरुषों की अपेक्षा अधिक आदर्शवादी हैं। सन्त सिंह शेखो के उपन्यास 'लहू मिट्टी' में दआल कौर की नारी सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है। नानक सिंह ने 'मत्रेई माँ' में सौतेली माँ के अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण किया है। जसवन्त सिंह कंवल के 'पूरनमासी' की नायिका चन्नो का रूप से अनुराग हो जाता है। रूप एक विधुर है। चन्नो के मामा उसका परिणय रूप से न कर करमो से कर देते हैं। करमो रणभूमि में शहीद हो वीरगति प्राप्त करता है। चन्नो

अपनी आत्मजा पूरन का परिणय रूप के पुत्र पुन्नो से कर देती है। 'पूरनमासी' की नायिका चन्नो अपनी दमनात्मक इच्छाओं का प्रतिफलन पुत्री के रूप में कर एक नूतन दिशा निर्धारित करती है। यद्यपि चन्नो में अपनी परम्पराओं को तोड़ने का साहस नहीं है। वह रूप के कई बार गृह पलायन के आग्रह को ठुकरा देती है। उसे अपनी सनातनी मर्यादाओं की सीमाओं का उल्लंघन अनुचित प्रतीत होता है। तथापि वह नवीन दिशा निर्मात्री है। वह सन्तान–मिलन कर उदात्तीकरण रूप अपनाती है। स्वतंत्रतापूर्व पंजाबी उपन्यासों में मध्ययुगीन भोगवाद का प्रभाव अकिंचन मात्र पड़ा है। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'पूरनमासी' की नायिकाएं यौनात्मक प्रभाव से प्रभावित हैं। उनमें भोगवादी प्रवृत्ति की अधिकता है। बचनो प्रेमी रूप पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के कई हथकंडे अपनाती है। उसकी ये समस्त अनुक्रियाएं भोगवाद से प्रभावित हैं। 'सॅच नू फांसी' की नायिका दलीप, अपने प्रियतम कंवर से कारागार में, मिलने जाती है। कंवर जेल से फरार हो जाता है। दलीप भोगवादी प्रवृत्ति–अधीन हत्यारोपी कंवर से परिणय कर उसके पुत्र की माँ बनने का साहस रखती है। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'पाली' की नायिका पति द्वारा त्याग दिए जाने के पश्चात बलवीर के अनुराग में अनुरक्त है। बलवीर और पाली के प्रेम–प्रसंग की चर्चाएं सर्वत्र प्रचलित होती हैं। वह लिबिडो–ग्रन्थि के वशीभूत हो बलवीर के घर भी जाती है। बलवीर के रणभूमि में घायल होने पर वह उसकी अत्यधिक सेवा करती है। इन सबके पीछे उसकी काम–कुंठा की प्रवृत्ति ही है जो भोगवाद की सूचक है। बमकांड में मृत्यु के समय उसकी मुट्ठी में बलवीर की भेजी चिट्ठी होती है। सन्त सिंह शेखो के उपन्यास 'लहू मिट्टी' में दया कौर पर मध्य युगीन भोगवाद का प्रभाव परिलक्षित है।

2%3 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-पंजाबी उपन्यासों में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण:

मध्ययुगीन नारी पुरुष की वासनात्मक उच्छृंखलता से आतंकित हो समाज की आधारशिला पर बैठी सिसकती रही पर किसी ने भी उसके अश्रुओं का मूल्य नहीं आंका। आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध तक पुरानी सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों की जकड़न से मानवीय संवेदनाओं को आबद्ध कर रखा था। पुरुष वर्ग द्वारा निर्मित सांस्कृतिक का और सामाजिक आचार–संहिता में नारी कैद हो गई थी। इसलिए सामाजिक कुप्रथाओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पाश्चात्य देशों की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवस्था प्रभावित हुई। फलस्वरूप नारी की उपयोगिता को समाज सापेक्ष समझा गया। समाज–सुधारकों ने नारी की स्थिति को सुधारने पर विशेष बल दिया। ''पाश्चात्य जागृति और चेतन के उपर्युक्त तत्वों से भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ और उसमें भी प्रगतिशील मान्यताओं के परमाणु जीवन एकत्र करने लगे। पाश्चात्य राजनीति, सभ्यता, शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज को जैसे अपनी सुप्तावस्था का भान होकर उसके निवारण से निमित्त इन्हीं पाश्चात्य आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त होने लगी और वह समाज के नए दर्शन की स्थापना करने में जैसे प्राण–पण से कटिबद्ध हो गया।''[19]

पाश्चात्य नारी की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति से प्रभावित होकर भारतीय नारियों में भी जागरण की प्रवृत्ति आई। सामाजिक सुधारक राजा राम मोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी जी आदि के

अथक प्रयासों ने भी नारी–प्रगति के विकास के द्वार खोल दिए। दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना कर नारी–स्वातंत्र्य के लिए प्रभावकारी कदम उठाए। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने नारी जीवन की संवेदना को नई दिशा प्रदान की। इन समाज–सुधारकों ने नारी को सामाजिक–जीवन के रंगमंच पर प्रतिष्ठित किया। गाँधी जी के अवज्ञा आन्दोलन से नारी पर्दे से बाहर निकल कर नेतृत्व पथ पर अग्रसर हुई। साहित्यिक क्षेत्र में रवि बाबू ने 'काव्येतर उपेक्षित' निबन्ध में नारी समस्या की चर्चा करते हुए नारी की उपेक्षा को उजागर किया। सती–प्रथा रोकने के लिए सन् 1968 में कानून बनाया गया। ब्रिटिश शासकों के सहयोग से यह कुप्रथा शनैः शनैः दूर होने लगी। ''इन आरम्भिक सुधारों ने सती प्रथा बाधित वैधव्य आदि कुप्रथाओं को धर्म के प्रतिकूल बतलाकर इनके उन्मूलन के द्वारा सुधार कार्य का शिलान्यास किया।''[20]

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने 'विधवा पुनर्विवाह' को समाजोचित माना और सरकार से कानून बनाने के लिए अनुरोध किया। इस उद्देश्य हेतु 'शारदा–सदन', 'हिन्दू विधवाश्रम', 'विधवा–विवाह–सहायक–सभा' आदि की स्थापना हुई। विविध प्रयासों के कारण नारी अंक–शैय्या से निकलकर संसद तक पहुँची। ''नारी–आन्दोलन के फलस्वरूप देश के कानून में भी परिवर्तन घटित हुआ। सन् 1913 ई0 'विमेंस इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना हुई, जिसकी शाखाएं समस्त भारत में खुलीं। मद्रास में एक 'चिल्ड्रेंस होम' की स्थापना हुई। सन् 1924 ई0 में बम्बई में 'बर्थ कन्ट्रोल लीग' की स्थापना हुई और 'नवयुग' नामक पत्रिका का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1915 ई0 में सरोजनी नायडू राष्ट्रीय कांग्रेस की सभा की मंत्री हुई। 'वीमेंस

एशोसिएशन' की ओर से वेश्याओं की दशा सुधारने तथा प्रश्नों को हल करने के लिए सन् 1934 ई0 में 'रेसकू होम' की स्थापना हुई।''[21] आज नारी उत्थान के शीर्ष पर बैठ गई है। इतने बड़े देश का राष्ट्रपति पद ग्रहण करना नारी–इतिहास की उज्जवलता का यथेष्ट प्रमाण है। ''सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में नारी को समानता का अधिकार दिया गया है और यह आशा व्यक्त की गई है कि यदि भारत परम्परागत सम्मान लब्ध करना चाहता है तो जीवन के हर क्षेत्र में नारी को स्वीकार करना होगा।''[22]

पंजाबी उपन्यासों में नानक सिंह के 'खून के सोहले' की नायिका और जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'रात बाकी है' की राज की मानसिकता अति उदारवादी है। राज अपने कामुक प्रवृत्ति के पति पाल का हृदय परिवर्तन करने के लिए अपनी सौत को भी सहर्ष स्वीकार करती है। राज की सौत सरवन भी राज के व्यवहार से प्रभावित होती है। 'सिविल लाइनज' की दरशन एय्याशी प्रियतम के कारण कुंठित और खंडित नारी है जो अस्मिता के खण्डित होने पर स्वपीड़ा पहुँचाकर आत्महत्या के लिए प्रयासरत है। अमृता प्रीतम के उपन्यास 'इक सी अनीता' की अनीता भग्नाशा में नूतन मार्ग अपनाती है। वह अपनी लिबिडो तुष्टि हेतु स्वनिर्मित अनीता की परछाई बन उससे अपनी संवेदनाएं अभिव्यक्त करती है। अस्तु स्वातंत्र्योत्तर पंजाबी उपन्यासकारों ने पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

2%3-1 नवजागरण की सुधारवादी दृष्टि से प्रभावित नारियाँ:

19वीं शती में परिवार रचना के केन्द्र बिन्दु नारी की विवशता पर सामाजिक विचारकों और समाज–सुधारकों ने प्रहार प्रारम्भ किया। नारी की अमानवीय बाध्यता पर अंकुश इस शती की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस दिशा में राजाराम मोहनराय का का योगदान ऐतिहासिक रहा है। रामकृष्ण परमहंस ने माँ को ईश्वर का सबसे प्रिय नाम स्वीकार किया था। स्वामी दयानन्द ने नारी समता और स्वातंत्र्य पर सहमति अभिव्यक्त की थी।

बींसवी शती परिवार रचना और मातृ शक्ति के सम्मान और स्वातंत्र्य की शताब्दी है। स्वामी विवेकानन्द ने नारी जाति के प्रति हीनता और तिरस्कार को नरक के द्वार का मार्ग जाना था। स्वामी विवेकानन्द ने नर–नारी में एक ही आत्मा का आवास मानकर दोनों की समता के प्रति सहमति प्रकट की थी। नर–नारी का भेद–भाव इस दिशा में तर्कहीन कहा जा सकता है। परिणामतः नारी को व्यापक सामाजिक मंच में प्रवेश का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में सहस्त्रों नारियों की भागीदारी का, इतिहास साक्षी है। इस शती के पूर्वार्द्ध में महात्मा गाँधी ने नारी के सम्मान और नर से समता की स्थापना का सतत् प्रयत्न किया।

भारतीय समाज में स्त्रियों की जो दीन–हीन अवस्था थी, वह महात्मा गाँधी की परिभाषा में हिंसा का ही एक रूप था। महात्मा गाँधी ने स्त्रियों को परदे में से खींचकर बाहर निकाल दिया। महात्मा गाँधी के आन्दोलन से स्त्रियों में अपने अधिकार के प्रति जागरूक होने की जो भावना जागी, वह पहले किसी आन्दोलन से नहीं जागी थी। महात्मा गाँधी ने भारत देश की मुक्ति की कल्पना, नारी के त्याग

और तपस्या द्वारा की थी। नारी मनुष्य जाति का मातृत्व और ममता से पोषण करती रही है। नर–नारी एक दूसरे के पूरक हैं। नारी जाति को अपनी दीन–हीन भावना के परित्याग का आमंत्रण महात्मा गाँधी ने दिया था। नारी जाति को अहिंसा अथवा अनन्त स्नेह के अवतार के रूप में महात्मा गाँधी ने स्वीकार किया था। महात्मा गाँधी नारी जाति की स्वतंत्रता के समर्थक थे। विनोबा ने नारी–नर की पूर्ण समानता को मान्यता दी है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वैधानिक आदि सभी असमानताओं की समाप्ति का संदेश विनोबा ने दिया ''स्त्री और पुरुष में जो कुछ भेद है वह बाहरी है। शरीर का भेद है, अन्दर चीज एक ही है, लेकिन हमारे समाज में यह कल्पना फैल गई है कि स्त्रियों यानी संसार। इससे अधिक गलत कल्पना नहीं हो सकती। परमार्थ में स्त्री–पुरुष के अधिकार में कोई फर्क नहीं है। व्यवहार में स्त्री के हाथ में जो सत्ता है, वह और किसी के हाथ में नहीं है। समाज का शील स्त्री ही बना सकती है...भारत में स्त्री की प्रतिष्ठा है। लोकमान्य तिलक ने कहा था कि हिन्दुस्तान में धर्म का, शील का रक्षण स्त्री ने किया।''[23]

साहित्य में नारी–चित्रण की समस्या इस काल में भी ज्यों की त्यों मिलती है। उपन्यासों पर पाश्चात्य नारी मूलक विचारों की क्रान्ति का प्रभाव तो परिलक्षित है, पर परम्परागत मोह–स्वरूप नारियेां का नया परिवेश ग्राह्य नहीं हो पाया। इस काल की कुछ नारियों पर पौरस्त्य की सुधारात्मक, भावना और पाश्चात्य–वैयक्तिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'भाग्यवती' उपन्यास की नायिका के संस्कार आदर्श हैं, किन्तु उसका व्यवहार नवजागरण से प्रभावित है। पति द्वारा परित्यक्तावस्था में भी वह साहस को नहीं छोड़ती और कहीं पर भी दुर्बल होते नहीं दिखाई पड़ती। वह

कर्तव्यनिष्ठा और साहस के साथ आर्थिक विपन्नताओं का सामना करती है। वह पति–वियोग में कहीं भी कमजोर पड़कर आँसू नहीं बहाती। वह यह सिद्ध कर देती है कि नारी अबला नहीं, सबला है। 'अरण्यबाला' की ब्रजमंजरी नवजागरण से प्रभावित नारी है। वह कर्तव्य–परायण नारी है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कर्तव्य को प्राथमिकता देती है। वह महत्वाकांक्षिणी है। वह स्वावलम्बन में विश्वास रखती है। इसलिए वह स्वयं भी स्वावलम्बी होने की आकांक्षा रखती है। राग और कर्तव्य का ऐसा संयोग इस काल की दूसरी नारी में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त ऐसी नारियां भी हैं जो भोग और कर्तव्य को समानता देती हैं। 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' की रमा पाश्चात्य नवजागरण से प्रभावित है। वह पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करती है। 'आदर्श सती' की कलावती दुराचारी बालकृष्ण से परिणय करती है। 'स्वर्गीय कुसुम' की कुसुम कुमारी पुरातन रूढ़ियों की श्रृंखला तोड़कर स्वतंत्र होना चाहती है। अस्तु ये नारियाँ नवजागरण से प्रभावित हैं।

नवजागरण में नारियों को समाज–सेवा, पति–सेवा में निष्ठावान दिखाया गया है। प्रेमचन्द्र ने नारी को पारिवारिक परिवेश के अतिरिक्त राष्ट्र–निर्माण के कार्यों में संलग्न किया। उन्होंने राष्ट्र–निर्माण में नर और नारी दोनों की ही सहभागिता को महत्व प्रदान किया। राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं नवजागरण से प्रभावित होकर 'प्रेमाश्रम' की विलासी जमींदार के कुकृत्य का विरोध कर देती है। नवजागरण से प्रभावित होकर 'रंगभूमि' की रानी जाहनवी रागरंग को तिलांजलि देकर, सामाजिक कार्यों के प्रति व्याकुल दिखाई देती है। 'गबन' की जग्गो कर्तव्य के प्रति जागरूक नारी है। 'कर्म–भूमि' की मुन्नी, रेणुका, नैना, सकीना आदि नारियाँ राष्ट्रीय आन्दोलनों में प्रतिभागिता लेती हैं। 'वरदान' की विरजन ग्रामीणों की भ्रान्तियों के निवारण में तत्पर है। 'गोदान' की मालती पाश्चात्य–सभ्यता से प्रभावित नारी है।

जयशंकर प्रसाद ने पारिवारिक संगठन, सामाजिक उत्थान, राष्ट्रीय कल्याण के लिए नारियों का सहयोग आवश्यक माना है। इसलिए प्रसाद जी ने उन्हें एक ओर करुणाामयी माना तो दूसरी ओर कर्तव्य की प्रतिमूर्ति समझा। ''राष्ट्रीय जागृति और स्वतंत्रता–प्राप्ति के अपने युग में यदि उन्होंने नारी का राष्ट्रीय रूप अपनी पूर्ण उज्जवलता के साथ चित्रित किया है, तो दूसरी ओर उसमें यही भावना प्रमुख हो रही है कि आवश्यकता के इस काल में देश को नारी के सहयोग और शक्ति की परम आवश्यकता है और उसे भी राष्ट्र–स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्र–वादी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए।''[24] 'तितली' की तितली ग्रामीण बालिकाओं हेतु पाठशाला का निर्माण करती है। वह अनाथ एवं अछूतों के लिए आश्रम का प्रबन्ध करती है। 'कंकाल' की तारा गणिका जीवन का परित्याग करने के लिए व्यग्र दिखलाई देती है। 'सिंह सेनापति' की नारियां रण–भूमि में खड्ग की धार का चमत्कार दिखाती हैं और पुरुषों का उत्साह–वर्धन करती हैं। चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'अपराजिता' में राज अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति सदैव जागरूक रहती है। ''इस उपन्यास में नारी स्वातंत्र्य का स्वर उच्च स्वरों में उद्घोषित होता है पर उसे प्राप्ति के लिए उपस्थित किया गया तर्क यथार्थवादी नहीं, आदर्शवादी एवं कल्पनाशील है। इस आदर्श–प्रयोग की व्यावहारिकता एवं यथार्थ स्वरूप को चतुरसेन शास्त्री उपस्थित करने में असमर्थ हैं।''[25]

उग्र के उपन्यास 'चन्द हसीनों के खुतूत' की नर्गिस अपने प्रणय को पाने के लिए धर्म परिवर्तन करती है। ''नर्गिस पश्चिमी सभ्यता एवं नवोन्मेष की भावना से ओत–प्रोत उस शिक्षित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में आती है, जो धर्म को चाहे वह

कोई भी धर्म क्यों न हो, रूढ़िमुक्त–प्रगतिशील रूप देखना चाहता था, नारियों की स्वतंत्रता एवं सम्मान चाहता था।''[26] जयशंकर प्रसाद की नारियाँ वैवाहिक स्वतंत्रता चाहती हैं और चतुरसेन शास्त्री एवं उग्र जी की नारियां स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं।

यशपाल जी के उपन्यासों की नारियों में बौद्धिकता की प्रधानता है, इसलिए वे विपन्न–परिस्थितियों में भी अपने अहं की रक्षा करने में सक्षम हैं। वे सामाजिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह–भाव रखती हैं। वे स्वतंत्रता की पक्षधर हैं। वे आर्थिक विषमता में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती हैं। किसी प्रकार के बंधन को वे प्रगतिशीलता का अवरोधक मानती हैं। मार्क्सवादी प्रभाव से परिलक्षित होने के कारण नारियों का विद्रोही रूप ही अधिक उभरा है। 'पार्टी कामरेड' की गीता साम्यवादी दल की सक्रिय सदस्या बन अखबार बेचकर चंदा एकचित्र करती है। यशपाल की नारियां व्यक्तिवादी और कामुक–प्रवृत्ति की हैं।

भगवती प्रसाद बाजपेयी की नारियाँ पाश्चात्य–सभ्यता में रंगी हुई रंगीन तितलियां हैं। वे निजी सत्ता के लिए सामाजिक आदर्शों की अवहेलना करती हैं। 'निमंत्रण' की मालती आधुनिकता से ओत–प्रोत है। वह कहती है ''मैं आजाद हूँ, मैं पुरुषों के बीच रहती हूँ, उनसे स्वच्छन्दता पूर्वक मिलती हूँ। बस इसीलिए मैं चरित्रहीन हूँ ? और घरों के अन्दर सीता और सावित्री जैसी सती, शकुन्तला और उर्वशी जैसी सुन्दरियों को पालते हुए भी जो लोग प्रो0 'प्रोस्टीच्यूट' रखते हैं वे क्या हैं''[27] मालती अपनी स्वतंत्रता हेतु अविवाहित रहने का निर्णय लेती है।

नवजागरण के सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण नारियां व्यक्तिवादी बन गईं। उनमें सामाजिक परम्पराओं के प्रति उदासीनता का भाव पनपने लगा। प्रेमचंद में सामाजिक संवेग मुखर रहा और चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि में सामाजिकता अपेक्षाकृत गौण हो गई। जैनेन्द्र के नारी पात्र पूर्णता व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए। उग्र और ऋषभचरण की नारियां काम–प्रवृत्ति से आक्रान्त दिखलाई पड़ी।

स्वातंत्र्योत्तर युग में पंजाबी उपन्यासकार नानक सिंह के उपन्यास 'खून दे सोहले', 'अग्ग दी खेड', 'मंझधार', 'चित्रकार', 'कटी होइ पतंग', 'आदमखोर', 'आस्तक नास्तक', 'पुजारी', 'नासूर' आदि में नारी पात्र समाजवादी से यथार्थवादी हो गए हैं। इनके उपन्यासों में स्त्री–जाति का सुधारवादी दृष्टिकोण प्रभावकारी है। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'रात बाकी है' की नायिका राज को अपनी इच्छा के विरूद्ध विवाहित पाल से परिणय करना पड़ता है। राज के पिता डाक्टर हैं और वह जागींरदार के विवाहित पुत्र से अपनी पुत्री का विवाह कर देते हैं। राज नवजागरण के सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित नारी है इसीलिए वह बिगड़ैल पाल को अपनाने के साथ–साथ अपनी सौतन सरवन को भी अपनाती है। राज ह्रदय और मन दोनों रूपों में उदार है। वह सौत को पति–गृह में स्थान दिलवाने के साथ उससे सद्व्यवहार करती है। सरवन भी राज को अत्यधिक स्नेह देती है। इसलिए वह राज को उसके प्रेमी चरन से मिलाने की सुनियोजित योजना बनाती है। किन्तु सेवक नाजर के मुखबरी के चरन को गिरफ्तार कर लिया जाता है। 'सिविल लाइनज' की नायिका दरशन विवाहित थानेदार बहाल के प्रेम–प्रपंच में फंस कर गर्भपात करवाती है। वह एय्याशी बहाल से बदला लेना चाहती है किन्तु असफल होने पर भग्नाशा से

कुंठित हो आत्महत्या करना चाहती है। प्रकाश उसे खाई से निकाल कर उसके प्राण बचा लेता है।

'रूपधारा' उपन्यास की नायिका जगरूप कठिन परिश्रम से शिक्षिका बनती है। सरपंच करतार सिंह की धर्म पत्नी के स्वर्ग–लोक सिधारने के पश्चात् उसके पुत्र को जगरूप गोद ले लेती है। जगरूप की इस उदारता को समाज एवं उसका पति केसर सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। केसर इसी सन्देह वश जगरूप से सम्बन्ध–विच्छेद करने का निश्चय करता है, किन्तु जगरूप की वास्तविकता से परिचित होते ही वह अपना विचार–परिवर्तित कर देता है। पंजाबी उपन्यासों के नारी पात्रों में जागृति आई है। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। उपन्यासकारों ने नारी की उन्नति के अवसरों के बन्द दरवाजों को खोल दिया है। नारी के प्रति उनके नूतन दृष्टिकोण ने संकीर्णता को समाप्त करने का आह्वान किया है।

2:3.2 पारिवारिक तथा सामाजिक मनोविज्ञान :

समाज के लघु रूप परिवार की महत्ता विचारणीय है। परिवार सम्बन्ध सापेक्ष और रक्त सापेक्ष स्नेह की प्राचीनतम निर्मित है। वैदिक ऋषियों ने उत्तम परिवार रचना का आदेश, समाज के उषाकाल में दिया था। परिवार सहस्त्रों वर्षों की कालावधि तक, अनिन्दनीय लोक–सेवा का साधन रहा है। स्मृतिकारों ने गृहस्थ–जीवन अथवा पारिवारिक जीवन को श्रेष्ठ घोषित किया था। मानव चेतना, जड़ता अथवा अपूर्ण चेतना से अति अथवा पूर्ण चेतना की दिशा में गतिशील है। मनुष्य वृहत्तर चेतना की ओर अग्रसर है। जिसमें वह अन्धकार से आलोक, भेद से अभेद, वामन से विशाल और स्फुट से समग्र चेतना का शोधकर्ता प्रतीत होता है।

मानव–चेतना अन्य प्राणियों से नितान्त भिन्न और उत्कृष्ट है। चेतना–बोध–प्राप्ति की प्रक्रिया है। पशु–जगत इन्द्रियजन्य चेतना तक सीमित होता है किन्तु मानव–चेतना संकल्प और सक्रियता से प्रेरित और प्रयत्नशील है। मानव–चेतना अपने परिवेश में विचार और आचार द्वारा सामंजस्य तथा समन्वय की स्थापना कर समग्रता की दिशा में अग्रसर रहती है। मानवीय चेतना सामूहिक जीवन जीने की कला और कौशल का आदिकाल से विकास करती रही है। अतः सामाजिक जीवन के प्रति जो चेतना है, उसे सामाजिक चेतना अथवा सामाजिक मनोविज्ञान का स्तर स्वीकार करना तर्क संगत है। इसके द्वारा परिवेश जन्य चिन्तन और चारित्र्य प्रकट होता है। सामाजिक मनोविज्ञान का परम्परा और प्रवाह से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा नदी अपने उद्‌गम से स्व–चेतन होकर अपनी विशालता की शोध में अनवरत प्रवहमान है। सामाजिक मनोविज्ञान का अभिप्राय है–मानवीय इतिहास के अतीत आधुनिक तथा आगत कालों के एक अथवा अनेक व्यक्तियों की सामाजिक समस्याओं और समाधान के सन्दर्भ में सजगता और सक्रियता।

सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तिमूलक और समाज मूलक दोनों में विद्यमान है। व्यक्तिक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान का ही एक रूप है। सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के दो रूपों को प्रकट करता है। एक रूप उसके क्षुद्र व्यक्तित्व का है और दूसरा उसके विराट व्यक्तित्व को प्रकट करता है।

व्यक्ति जितने अंश में सामाजिकता को ग्रहण करता है, उतना ही उसका जीवन समाज–सापेक्ष होता है। जब व्यक्ति स्वार्थ–केन्द्रित होकर समाज के विपरीत होता है, तब समाज–विरोधी स्थिति रहती है। व्यक्ति–मनोविज्ञान जब अति व्यक्तिवादी होता है, तब उसका उदात्तीकरण होता है।

सामाजिक मनोविज्ञान चिन्तनशील वृत्ति और संश्लिष्ट चरित्र के कारण समस्याओं का सृजन करता है। ''परमेश्वर की यही इच्छा है कि मानव समाज सदा चिन्तनशील रहे। इसलिए नई–नई समस्यायें मानव के सामने खड़ी होती हैं और उसे नए–नए आन्दोलन करने पड़ते हैं। नई–नई समस्याएं खड़ी होना, यही मानव की चेतना का लक्षण है। यदि समस्त समस्याएं खत्म हो जाएं तो समझ लें मानव जड़ बन जाएगा। जड़–पत्थर के सामने कोई समस्या नहीं होती पर मानव चेतन है, इसलिए उसके समक्ष सदा समस्याएं रहेंगी।''**28**

जिस समाज में मनुष्य अपनी सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक नहीं होते वह समाज प्रगति से ही जैसे पलायन करता है। सामाजिक समस्या का अभिप्राय, वह आपत्तिजनक अथवा अवांछनीय परिस्थिति अथवा परम्परा है, जिसे अधिकांश सामाजिक व्यक्ति निराकरण योग्य घोषित करते हैं। सामाजिक समस्याएं, प्राकृतिक और जैविक समस्याओं से भिन्न होती हैं। मानव समाज की प्रगति तथा उसकी सभ्यता का प्रवाह सामाजिक समस्याओं के निराकरण से सम्भव है। समस्याओं के समाधान के प्रति जो प्रयत्न और पुरुषार्थ है, वह सामाजिक मनोविज्ञान की परिणति है। सामाजिक मनोविज्ञान के अभाव में समाज का सृजन और पोषण सम्भव नहीं है। सामाजिक मनोविज्ञान के अभाव में मनुष्य जाति पशुओं का समूह मात्र है।

''जब मानव–समाज में.....पारस्परिक उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया होती है, तब सजातीयता की अनुभूति उत्पन्न हो जाती है। हम यह अनुभव करते हैं कि जैसे हमारे विचार हैं, विश्वास हैं, प्रथाएं हैं, तर्ज तरीके हैं– रुचियां हैं, वैसे ही दूसरों की भी हैं। हममें और उनमें समानता है, एकता है। जब तादाम्य की यह भावना उत्पन्न हो जाती

है, जब सजातीयता की भावना जाग्रत हो जाती है, मनुष्य अपने को अन्य मनुष्य के समान समझने ही नहीं अनुभव करने लगता है। समाज में जब यह तत्व, सजातीयता की अनुभूति उत्पन्न करता है, तब समाज में दृढ़ता–एकता सामाजिक जीवन में एकतानता का समावेश होता है।''[29]

सामाजिक मनोविज्ञान का अंकुर इतिहास के अंधकार में प्रस्फुटित हुआ था। इतिहास के प्रकाश में इसका निरन्तर विकास होता रहा है। सामाजिक मनोविज्ञान के प्रवाह में परम्परा, परिवर्तन और प्रगति ने महत्वपूर्ण की भूमिका का निर्वाह किया है। सामाजिक मनोविज्ञान ने व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व और व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्धों के स्वरूप को निर्धारित और नियंत्रित किया है। सामाजिक मनोविज्ञान की सार्थकता, प्रत्येक मानवीय समस्या पर सामूहिक दृष्टि से विचार करना है। सामाजिक चेतना ने आधुनिक युग में अधिकाधिक विस्तार किया है। व्यक्ति, उसका मन और महत्वाकांक्षा, परिवार और परिवेश, समाज–संरचना और स्वरूप, सामाजिक न्याय–अन्याय, सामाजिक नीति और अनीति, धर्म और अध्यात्म, राज्य और राजनीति, शान्ति और समर आदि सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत विचारयोग्य हैं।

भारतेन्दु–युग के पूर्व नैतिक मूल्यों और सामाजिक व्यवस्था का पतन हो चुका था। पाश्चात्य–सभ्यता के प्रभाव से संयुक्त परिवार विघटित होने लगे। मानव जीवन अवसाद और तनावग्रस्त हो चुका था। भारतेन्दु युग में नई पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का संकल्प लिया गया। भारतेन्दु के नेतृत्व में उपन्यासकारों ने उपदेशात्मक नीति के साथ आदर्शवादी दृष्टि को अपनाया। अस्तु उपन्यासों के फलक में सुधारात्मक और उपदेशात्मक प्रवृत्ति अभिव्यक्त होने लगी। पात्रों में तामसी–वृत्ति

के स्थान पर सात्विक वृत्ति का उद्‌बोधन किया गया। ''वस्तुतः आदर्शवाद एक ऐसे सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। जिसके अनुसार इस सृष्टि में उन विशेषताओं को, जो अत्युत्तम, उपयोगी एवं मानवतावादी दृष्टि के अनुकूल स्वीकृत हैं, अत्यन्त व्यापक एवं चरम रूप प्रदान कर निरन्तर उच्च स्थान, विस्तृत पृष्ठभमि पर प्रदान किया जाना चाहिए। उन विशेषताओं को व्यष्टि में समष्टि की ओर गतिशील कर जन–मानस में सर्वव्यापी ढ़ंग से उनका विकास कर कल्याणकारी भावनाओं का विकास कर कल्याणमयी भावनाओं का विकास करना ही आदर्शवाद का मूल उद्‌देश्य होता है।''[30]

प्रेमचन्द युग में आदर्श और यथार्थ जीवन के सुन्दर रूप की अभिव्यक्ति है। प्रेमचंद के कथनानुसार ''जिस साहित्य में हमारी सुरुचि न जगे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य–प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह आज हमारे लिए बेकार है। वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।''[31] इस काल की सभी नायिकाओं में सौजन्यता है, सहिष्णुता है, थोड़ी बहुत त्यागवृत्ति है, परिवर्तनशीलता के प्रति आग्रह है और वे सभी नवोन्मेष की भावना से ओत–प्रोत हैं।

''नारियों की शिक्षा का स्वरूप कैसा हो, समाज में उसकी स्थिति किस प्रकार हो, राजनीति में वे किस प्रकार भाग ले सकती हैं, इस काल के उपन्यासों ने इसका बीड़ा उठाया और नारियों को तितली बन जीवन व्यतीत करने से रोकने के लिए प्रयास किया। इस प्रकार प्रायः सभी उपन्यासकारों ने युग की समस्याओं को अपने से

पिछले की तुलना में अधिक गहराई से परखा और इन्हें हृदयगंम कर चेतना कसौटी पर कपड़ा छानकर मंजी हुई तार्किक शक्ति से अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया।''[32] प्रेमचंद के उपन्यासों की नारियां आदर्श–प्रेम में विश्वास रखती हैं। 'रंगभूमि' की सोफिया, 'गोदान' की मालती, 'वरदान' की विरंजन, 'प्रेमाश्रम' की श्रद्धा सभी में प्रेम का उच्च रूप मिलता है।

वृन्दावन लाल वर्मा ने सामाजिक परिवेश में व्यक्ति आंका है। इसलिए व्यक्ति से समाज श्रेष्ठ हो गया है। व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक कुंठाओं से सामाजिक कुंठाओं को प्राथमिकता दी गई है। वर्मा जी का साहित्य जातीय संगठन और सांस्कृतिक जीर्णोद्धार और पुनर्रचना का एक व्यवस्थित उद्यान दिखलाई पड़ता है। उनमें राष्ट्रीयता और मानवता के मूल स्वर सुनाई पड़ते हैं। उनके नायक अथवा विशिष्ट पात्र मानवीय उच्चादर्शों की प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प हैं। मानवमन की निम्न प्रकृति पर विजय पाने के लिए संघर्ष करते हुए सतत् जागरूक भाव से वेगवान पानी की धारा की तरह बढ़ते ही जाते फिर चाहे उन्हें विजय मिले या पराजय। अन्य पात्र या तो उनकी लक्ष्य सिद्धि में सहयोगी हैं अथवा श्रंखला की कड़िया जोड़ने वाले या कथा के टूटे जाल को बुनने वाले अथवा गति में बाधा उपस्थित करने के कारण या तो स्वयं पिसने–कुचलने के लिए होते हैं अथवा अन्धकार को गाढ़ा बनाकर आलोकवान पात्रों की भांति सौंदर्य को और भी अधिक निखारने वाले सिद्ध होते हैं। इस प्रकार ये सब पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कथाकार के व्यापक उद्देश्य की सिद्धि में नियोजित रहते हैं। 'कचनार' की नायिका का चरित्र सामाजिक तत्वों से निर्मित हुआ है। वह अहंवादी और महत्वाकांक्षी नारी है। कचनार का चरित्र

असंगतियों से घिरा हुआ है। ''मेरे साथ भांवर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए, अपनी जीवन–सहचरी बनाइए। वचन दीजिए मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी।''[33] चतुसेन शास्त्री के उपन्यासों में भी आदर्शवादी और यथार्थवादी प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रेमचंद ने व्यक्तिवादी मनोविज्ञान की अपेक्षा पारिवारिक मनोविज्ञान का विश्लेषण किया है। इस बात की उद्घोषणा वह स्वयं करते हैं ''हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं और सारी जिंदगी के साथ ऊँची निगाह, हमारी जिन्दगी का लक्ष्य है।''[34] उन्होंने ऐसे पात्रों का चित्रण किया है जो समाज–सापेक्ष हैं। ''उन्होंने समाज के माध्यम से व्यक्ति की समस्याओं पर आलोक डाला है। साहित्य पर केवल व्यक्ति मानस की संवेदनाओं का एक छत्र प्रभुत्व उन्हें मान्य नहीं है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति समाज का अविभाज्य अंग है। समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व स्थिर है और समाज के विहीन होकर उसका मूल्य शून्य हो जाता है। प्रेमचन्द्र व्यक्ति को व्यक्ति की दृष्टि से नहीं सामाजिक दृष्टिकोण से आंकते हैं। समाज का मंगल उनका साध्य है। वे व्यक्ति का उतना ही विश्लेषण करना चाहते हैं जितना समाज–हित के लिए वांछित है।''[35]

जयशंकर प्रसाद ने नारी के त्यागमयी जीवन के चित्र अंकित किए हैं। उन्होंने सामाजिक विषमता, पाखण्ड, भ्रष्टाचार का उपन्यासों में यथार्थ चित्रण कर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। ''प्रसाद की सामाजिक चेतना का अधिक स्पष्ट रूप 'कंकाल' और 'तितली' में परिलक्षित होता है। उन्होंने धार्मिक आडम्बर, सामाजिक विषमता आदि के नग्न स्वरूप को इन उपन्यासों में अंकित कर व्यक्तिवादी

जीवन दृष्टि का यथार्थ परिचय दिया है। काव्य में उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी है किन्तु उपन्यासों में उनका उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज की वास्तविक स्थिति का उद्घाटन करना है। वे प्रेमचंद की भांति केवल जमींदारों और सरकारी अफसरों के अत्याचार पीड़ित किसानों की दुर्वस्था का चित्रण करने में ही अपने उद्देश्य की इतिश्री नहीं समझ लेते। समाज में स्त्री–पुरुष की मूल भावनाओं का विश्लेषण भी करते हैं और इसमें अपने व्यक्तिवादी चिंतन का आभास देते हैं।''[36]

पंजाबी उपन्यासों के जन्मदाता भाई वीर सिंह ने सिंह सभा लहर के प्रभाव से आदर्शवादी और धार्मिक नारी पात्रों का चित्रण किया। भाई मोहन सिंह वैद ने 'सुशील नूंह', 'सुखी परिवार', 'सुखदेव कौर,' 'स्त्रियां दी आजादी', में पारिवारिक और सामाजिक मनोविज्ञान का वर्णन किया है। वह सामान्य जन मोहमूलक परिवार के पक्षधर रहें हैं किन्तु उन्होंने भारतीय चिन्तन की तेजस्वितामय ज्ञानमूलक परिवार के महत्व को अस्वीकार नहीं किया है। चरन सिंह शहीद ने 'दलेर कौर' 'सराब कौर', 'चंचल मूरतीया' में सामाजिक सुधारवादी दृष्टि अपनाई है। नानक सिंह के उपन्यासों 'मत्रेयी माँ,' 'काल चक्र', 'प्रेम संगीत', 'चिट्ठा लहू' में सामाजिक कुरीतियों, फिजूल खर्ची, छुआ छूत, धार्मिक स्थलों पर भ्रष्टाचार समाज के ठेकेदारों की काली करतूतों, घूसखोरी आदि का वर्णन किया गया है। नानक सिंह के 'खून के सोहले', 'अग्ग दी खेड', 'मंझदार', 'कटी होई पतंग', 'पुजारी', 'नासूर', आदि में दैनिक जीवन की समस्याओं का स्वाभाविक चित्रण है। पंजाबी उपन्यासों में परिवार का अंकन मोहमूलक आधार पर भी है और ज्ञान मूलक परिवार का प्रखर स्वर भी उसमें मुखरित है। इस प्रखरता में सामाजिक मनोविज्ञान का वह रूप है, जो सारहीन परम्पराओं को

अस्वीकार करने की शक्ति निर्मित करता है। पंजाबी उपन्यासकारों ने पारिवारिक जीवन के मोह और माधुर्य के प्रति, जो आसक्ति प्रकट की है, वह उल्लेखनीय है। पारिवारिक जीवन के स्नेह स्निग्ध स्वरूप को अक्षुण्ण रखने का अथक और अखंडित प्रयत्न किया है। भारतीय सामाजिक मनोविज्ञान में परिवार के दाम्पत्य जीवन को अटूट सम्बन्धों के ताने बाने में बुने जाने की पंजाबी उपन्यासों में सहज कल्पना है।

2.3-3 नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण पर मनोविज्ञान का प्रभाव :

प्रेमचंद कालीन नारी पात्रों पर विचार करने के पश्चात् यह विदित होता है कि इन नारी पात्रों में मानवतावादी स्वर मुखर हुआ है। इन उपन्यासकारों ने सामाजिक पहलू को प्राथमिकता देते हुए, सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण किया है, परिणामतः इन पात्रों का अन्तर्जगत निस्पादित और सम्पुटित है। यदि किसी उपन्यासकार ने पात्रों के अन्तर्मन का विश्लेषण भी किया है, तो वहाँ सामाजिक परिवेश प्रमुख रहा है। प्रेमचंद ने नारी के लिए परम्पराओं की सीमा को अधिक महत्वपूर्ण माना है।

इतना होने पर भी शिक्षा के प्रभाव–स्वरूप नारी पुरुष के नियंत्रणवादी दृष्टिकोण से अपने को मुक्त समझने लगती है। प्रेमचंद युगीन शिक्षित नारियों की जीवन–शैली, समस्याओं के प्रति जागरूकता, अन्तर्द्वन्द्वों के प्रकाशन में उन्मुक्तता मौलिक अधिकारों की चेतना ने नारी के अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। इस काल के अन्तिम चरण के नारी–पात्र समाज से तादात्मयीकरण करने के पश्चात् भी अपनी पहचान बनाए हुए हैं।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों के नारी–पात्र वैयक्तिक हैं। इनके उपन्यासों की नारियां करुणामयी, नियतिवादी और स्वच्छन्द प्रवृत्ति की हैं। प्रसाद की नारियों में कमनीयता, कोमलता और करुणा मिलती है। ''नारी में नर के संसर्ग की निसर्ग आकांक्षा होती है। प्रेम–प्रसंग की सफलता के पश्चात् करुणा की विस्तृत छाया उसके जीवन–पटल पर छा जाती है और वह नियतिवाद पर विश्वास करती हुई अपने जीवन को यों ही से लेना चाहती है।''[37] प्रसाद के नारी–पात्र प्रेम का प्रतिदान चाहते हैं। वे पुरुष के प्रति जितनी संवेदनशील हैं उतनी ही संवेदना की पुरुष वर्ग से अपेक्षा रखती हैं। जबकि प्रेमचंद के नारी पात्र सर्वस्व समर्पित करते हैं लेकिन कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं रखते। उनका ध्येय केवल पारिवारिक सुख सुविधा ही है। प्रेमचन्द ने आदर्श की भूमि पर यथार्थ का बीजारोपण किया है। प्रसाद ने यथार्थ के साथ आदर्श की भी अभिव्यक्ति की है। प्रसाद की नारियाँ कहीं–कहीं पुरुषों के विरूद्ध भी होते दिखाई देती हैं। 'तितली' की राजकुमारी वैधव्य होते हुए भी सुहागिन की जिंदगी जीती है। राजकुमारी सुखदेव चौबे से प्रणय कर अपनी कामुकता की तृप्ति करती है। ''प्रेमचन्द के नारी–पात्र बाह्य संघर्षों की ही अभिव्यंजना करते हैं। अन्तर्संघर्ष की उद्‌भावना करने वाले चरित्र प्रेमचन्द साहित्य में अधिक नहीं बन सके हैं।''[38]

यशपाल के नारी–पात्र व्यक्तिवादी और भौतिकतावादी विचारों से प्रभावित हैं। पाश्चात्य–प्रभाव के कारण उनकी नारियाँ आत्मिक परिष्कार की अपेक्षा काम–प्रवृत्ति ग्रस्त हैं। व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक स्वतंत्रता हेतु वह यौवन का दान करती दिखाई देती हैं। 'दादा कामरेड' की शैल, 'देशद्रोही' की यमुना, चन्दा, 'पार्टी कामरेड'

की गीता के चरित्र में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की प्रधानता है। उनमें अहं–प्रवृत्ति की प्रधानता है इसलिए आध्यात्मिक प्रेम की उपेक्षा हुई है ''संतान की चाह व्यक्ति की जन्मजात मांग है। संतान की उत्पत्ति के उद्देश्य से प्रकट होने वाला प्रेम सभी जीवों और मनुष्यों में होता है। अपने क्रम को जारी रखने के लिए ही सृष्टि स्त्री–पुरुष में आकर्षण पैदा करती है। प्रेम और आकर्षण का प्राकृतिक, शाश्वत और मूल रूप यही है। बुद्धि और शिक्षा के बढ़ने से प्रेम का रंग बदलने लगता है।''[39] इसलिए इनके नारी–पात्र प्रेम के क्षणों में सामाजिक सीमाओं का उल्लंघन करते हैं।

प्रेमचंद युग के अन्तिम चरण में ही नारी पात्रों में अहं–प्रवृत्ति दिखलाई पड़ने लगती है। नारी–पात्रों में अहं–प्रवृत्ति मनोविज्ञान की ही देन है। मनोविज्ञान के प्रभाव के फलस्वरूप उपन्यासों में सामाजिक तत्वों का शनैः–शनैः ह्रास होने लगता है और व्यक्तिवादी भावना प्रबल होने लगती है।

जैनेन्द्र के पात्र मनोवैज्ञानिकता के रंग में पूरी तरह रंगे हुए दिखाई देते हैं। उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, तनाव, अवसाद आदि का स्वाभाविक और सजीव–चित्रण करने में वे सिद्धहस्त हैं। उनके पात्र आत्मनिष्ठ और व्यक्तिवादी हैं। मानसिक संवेगों, उद्गारों को प्रकट करने में वे अद्भुत क्षमतावान हैं।

अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' में शशि और शेखर की समस्या मात्र देहदान की समस्या नहीं है, वे देह और विद्रोह की भूमि पर एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। पारिवारिक जीवन की एकात्मकता, पिता के देहान्त से उत्पन्न नीरवता तथा ससुराल की सशंक–परिस्थितियां उसके भीतर की कोमलता को आहत करती हैं। सम्पूर्ण विरोधी परिवेश में लिपटी शशि यदि शेखर के व्यक्तित्व के सानिध्य से शीतलता पाना

चाहती है, तो इसे अवैध कहना समीचीन नहीं है। ''जहाँ जीवन–रस उन्हें वहाँ ले जाने लगता है। वे उस छिछली कभी–कभी मिथ्या और प्रायः ही रूढ़िगत संवेदना और भाग्य से गहरे क्षत होते चले जाते हैं।''[40]

राजेन्द्र यादव की 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी एक ऐसी नारी है ''वह नुमाईश रखे जाने से इंकार करती है, विद्रोह करती है और भटकनों की राह में बहकर लौट आती है।'' वस्तुतः इस सन्दर्भ में उसके आत्म–संघर्ष को जिस मानवीय गहराई से अभिव्यक्त किया गया है वह करुण और मौलिक है। निन्नी के भीतर भय–संवेग है ''जो उल्टे पड़े तिलचट्टे की तरह हाथ–पांव मारता है। लेकिन भीतर एक सपना भी है जो मकड़ी के तने जाले की तरह फैलता है।''[41] भय और स्वप्न से आक्रान्त यह कलूटी लड़की विचित्र वेदना की शिकार है। कोई भी घटना कोई भी व्यक्ति उसे अप्रत्याशित नहीं लगते। उसके संवेदनशील मानस में विरानगी है। वह नितान्त अकेली, निराश और तनावग्रस्त अवसाद से जूझती दिखाई देती है। अपनी कुरूपता के कारण वह आत्महीनता और आत्मपीड़ा को सहती है। आत्म द्वन्द्वों, छोटी–छोटी घटनाओं ने निन्नी को पराजित किया है। दर्शन का आगमन उसे तृप्ति पहुँचाता है। दर्शन के सामीप्य से उत्पन्न निन्नी की प्रतिक्रियाओं को राजेन्द्र यादव ने बड़ी सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है। कहीं गहरी तृप्ति, कहीं गहरी उदासी के बीच जैसे निन्नी का जीवन एक लम्बे दुःस्वप्न की तरह चलता रहता है। वह इनके बीच अनदेखे अनजान पुल निर्मित करती है।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्धेरे बंद कमरे' में हरबंस और नीलिमा के सामाजिक जीवन और यौनात्मक तनावों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

नीलिमा–हरबंस के सम्बन्धों के भीतर जो उतार–चढ़ाव है, उसकी यथास्थिति से इंकार नहीं किया जा सकता। हरबंस और नीलिमा यदि किसी लम्बे समय–संदर्भ में एक दूसरे के प्रति खीझते हैं तो वह एक दूसरे से अलग होकर संतुष्ट भी नहीं हो पाते, बल्कि घबराहट अनुभव करते हैं। यह संस्कारों का स्तर है ''अंधेरे बंद कमरे बेशुमार सम्भावनाओं के बावजूद अनजाने ही एकरसता के अंधेरे कमरे में बंद हो गया है और जीवन से किसी गहरे साक्षात्कार का आभास नहीं दे पाता।''[42] नीलिमा का चरित्र आन्तरिक भोग में असफल रहता है। वह पति के व्यवहार की उत्तेजना से कुंठित हो प्रतिक्रियाओं में जीती है। कमलेश्वर के 'डाकबंगला' की इरा ने सपनों में अपनी भावनाओं का भोग नहीं किया है। वह उन राहों से गुजर कर आई है, जहां वह अपने अनुभव का भोग करती है। आत्मा की स्वीकृति के बिना भी मनुष्य जीवित रह पाता है, शुद्ध उत्तेजनाओं के भीतर भी शरीर जी लेता है और यह दोहरी जिन्दगी एक साथ चल सकती है। इस अनुभव का भी एक मनोविज्ञान जो अस्तित्ववादी मनोविज्ञान कहलाता है।

नरेश मेहता के 'दो एकान्त' की वानीरा और विवेक के सम्बन्ध में जो तनाव है उसके पीछे अनेक छोटे–छोटे मानसिक द्वन्द्व हैं। जिस कारण ऐसी स्थितियां बन गई हैं कि दोनों सेतु बनाकर एक दूसरे से मिल तो सकते हैं लेकिन एक दूसरे के व्यक्तित्व में समाहित नहीं हो सकते हैं। इससे वानीरा आहत होती है। उसके व्यक्तित्व में दर्द और उपेक्षा का भाव भर गया है। विवेक उसके लिए एक शोभा की वस्तु की तरह निर्जीव हो गया है। वानीरा पति का परम्पराबद्ध प्रेम–समर्पण भी चाहती है, प्रेमियों का देहदान भी। अपने सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को देहदान करने से उसे संतुष्टि प्राप्त होती है। इसके साथ ही वह पति का सानिध्य भी चाहती है। वह यौन–सम्बन्धों की किसी भी नैतिक सीमा को स्वीकारने में असमर्थ है।

पंजाबी उपन्याकार अमर सिंह के उपन्यास 'घर दा निरबाह' और 'छोटी नूह' में शिक्षिता नारी अपनी पतितावस्था और परतन्त्रता के प्रति सजग हो चुकी है। वह समझती है कि सदियों से प्रचलित पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता का विकास नहीं हो सका है। जनतंत्र और समाजवाद के प्रसार के साथ–साथ समाज में नारी को भी उसका उपयुक्त स्थान देना ही होगा, जिसमें वह अपने जीवन और व्यक्तित्व की सार्थकता के लिए समान अवसर पा सके।

मास्टर तारा सिंह के उपन्यास 'प्रेम लगन', 'बाबा तेगा सिंह', प्रो0 नन्दे के उपन्यास 'मुराद' एवं 'तेजकौर' प्रिंसिपल निरंजन के उपन्यास 'प्रेम कणी' तथा स0 जोगिन्दर सिंह के उपन्यास 'कामनी' और 'कमला' में नारी सामाजिक अथवा पारिवारिक दमन से मुक्ति पाने के लिए अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता का परिचय देती है। पंजाबी उपन्यासों में वैयक्तिक स्वतंत्रता की प्रवृत्ति मनोविज्ञान की देन है। अमृता प्रीतम के उपन्यास 'अशू', 'इक सवाल' में नारी–मनोविज्ञान का स्वाभाविक चित्रण है। सोहन सिंह शीतल के उपन्यास 'अन्नी सुन्दरता', 'दीवे दी लौ' में सामाजिक मान्यताओं के परिवर्तन के साथ–साथ नारी ने अपनी सहज स्वतंत्रता की प्राप्ति कर नारी गौरव और गरिमा उपलब्ध की है।

सुरिन्दर सिंह नरूला के उपन्यास 'पिओ पुत्तर' (बाप–बेटे) में यथार्थवादी मनोविज्ञान का विश्लेषण हुआ है। इनके उपन्यास 'रंग–महल' में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का वर्णन है। इनके अन्य उपन्यास 'सिल अलूणी', 'राहे कुराहे', 'रातां होईआं वडीआं' में विरहणी के हृदय की मानसिक व्यथा की गाथा है। सन्त सिंह शेखों के उपन्यास 'लहू मिट्टी' पंजाब के किसान के परिश्रमी–जीवन का सजीव चित्रण है।

इस उपन्यास में विजय सिंह, दयाल कौर और मदन के व्यक्तित्व का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

करतार, सिंह दुग्गल का उपन्यास 'आन्दर' यथार्थवादी मनोविज्ञान पर आधारित है। यह पाश्चात्य–अश्लीलता के प्रभाव से प्रभावित है। जसवन्त सिंह कंवल के उपन्यास 'पूरनमासी' में शामो और चन्नो दोनों युवतियों के मनोविज्ञान का स्वाभाविक विश्लेषण हुआ है। शामो अपने गाँव के एक युवक दयाल से अनुराग करती है। शामो पर पाश्चात्य–सभ्यता का प्रभाव परिलक्षित है। वह अपने प्रियतम दयाल से ईश्क करने का कोई भी अवसर हाथ से निकलने नहीं देती । उसकी सखी चन्नो इसके विपरीत है। वह रूप के प्रेम से अनुरंजित तो है लेकिन वह मर्यादा में रहती है। चन्नो का प्रेमी उससे कई बार गृह–पलायन की बात करता है लेकिन चन्नो सदैव इसे अस्वीकार देती है क्योंकि उसके संस्कार उसे सदैव इस कार्य को करने के लिए प्रतिबन्धित करते हैं। चन्नो का विवाह निर्धन करमो से हो जाता है। रूप का विवाह प्रसन्नी से हो जाता है। रूप और प्रसन्नी का दाम्यत्य–जीवन समायोजित हो जाता है। पूरनमासी में चन्नो और शामो की विवाह–पूर्व की रागबद्धता का जसवन्त सिंह ने बड़ा ही सहज और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'रूपधारा' उपन्यास में नायिका जगरूप के आन्तरिक आदर्श की दृढ़ता और सामाजिक आदर्श के बीच द्वन्द्वात्मक संघर्ष है। जगरूप किस तरह परम्परामयी समाज में जमींदारी और पूँजीवादी व्यवस्था के अधीन परतन्त्रता का जीवन व्यतीत करती है। जो उसकी मानसिक व्यथा का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस उपन्यास की दूसरी नारी तेज कौर असहायावस्था में एक

अबला नारी के रूप में चित्रित की गई है, जो पति परित्यक्ता है और श्वसुर की वासनापूर्ति का शिकार बनती है। 'हाणी' उपन्यास में तापी उसकी पुत्री धन्तो विपन्नतावश अनमेल–विवाह के आघात से शारीरिक एवं मानसिक द्वन्द्वों से जूझती दिखाई गई हैं। तीसरी नारी बीरो विवाहपूर्व ही लाभे जट के प्रति रागबद्ध है। लाभा भी बीरो से अत्यधिक अनुराग करता है। जब लाभे के परिवार वाले उनके परिणय से इन्कार करते हैं तब लाभा बीरो के साथ पलायन करने की योजना बनाता है..... ओह सोचण लगा रि जे इसनू लै चलां तां की होण लगा है। आपे लोक चार दिन भौंक के चुप कर जाणगे। बीरो बन्दे नालों वैद्य कम्म कर सकदी है। बीरो वरगी जाण देण वाली कुड़ी सारा जहान फोलियां नहीं मिलणी पर भंडी वी पुज के होंवेगी।.....लाभे दे दिल विच बीरो दे पिआर लई आया सुचा खिआल वी झूठे जटके प्रभाव ते वैलीआँ, दी अणहोणी अवरो विच गुआच के रह गया।''[43] बीरो का प्रणय सामाजिक संकीर्णताओं–समक्ष पराजित हो जाता है। बीरो भले ही स्वतंत्र व्यक्तित्व की नारी है किन्तु वह प्रियतम लाभे का हृदय परिवर्तन करने में असफल हो जाती है। नरिन्दर पाल सिंह के उपन्यास 'पुनिआं की मॅसिआ', 'इक सरकार बाझो', 'खनिओ तिखी', 'गगन गंगा', और 'सूत्रधार' में नारी की स्वतंत्रता के प्रति उदारतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। हरनाम दास सहराई के उपन्यास 'सफेदपोश' और 'पथिक' नारी के मानसिक द्वन्द्व एवं घात–प्रतिघात के चित्रण में सक्षम हैं। इन सभी पात्रों के निर्माण में बाह्याचारों को सर्वोपरि माना गया है, फलस्वरूप आन्तरिक विकलता प्रभावहीन बन गई है।

सोहणसिंह शीतल के उपन्यास 'अन्नी सुन्दरता', 'प्रीत कि पैसा', 'प्रीत कि रूप', 'दीवे दी लौ' में नारी–पात्र–स्वच्छन्दवादी प्रकृति के' होते हुए, आदर्श के भार से नत–मस्तक हैं। शीतल जी में घटनाओं की परत सघनी होने के कारण पात्रों का चरित्र उसमें दब जाता है। इनकी प्रायः सभी नारियां आदर्श, त्याग, लोकमंगल, परोपकार की भावनायुक्त हैं।

गुरदयाल सिंह के उपन्यास 'मड़ीदा दीवा', 'अणहोए' 'कुवेला', 'अॅध चानणी रात' की नारियाँ बाह्य संघर्षों से जूझती हैं। इनकी नारियाँ आदर्श की धरती पर यथार्थ–बीजारोपण करती हैं। वे कहीं–कहीं पुरुषों का विरोध भी करती हैं। इनके नारी–पात्र हृदय परिवर्तन जैसे सिद्धान्त को स्वीकारने में असमर्थ हैं।

नरिंजन तसनीम के उपन्यास 'परछावें', 'कसक', 'रेत छल', 'हनेरा होण तक' की नारियां परमपरावादी होते हुए भी व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी विचारों से प्रभावित हैं। शिक्षा के प्रभाव के कारण इनके नारी–पात्रों ने बौद्धिक विकास के साथ संस्कारगत दृष्टिकोण को भी विकसित किया है।

नानक सिंह के उपन्यास 'संगम', 'छलावे', 'गंगाजली में शराब', 'कागतां दी बेड़ी' में नारियाँ, यथार्थ के धरातल पर आदर्श को पनपने देती है। इनके नारी–पात्रों में नानक सिंह की निष्ठा और आदर्श–भावना की अमिट छाप दिखाई देती है। उनकी नारियाँ स्पष्टवादिनी है। उनके व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी भावनाओं का सम्मिश्रण है।

अमृता–प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर', 'अशू', 'इक सलाव', 'अॅक दा बूटा', आदि की नारियों में प्रेम के प्रतिदान की उत्कट इच्छा होती है। वे पुरुष के प्रति जैसा अनुराग रखती हैं वैसा ही वह उनसे पाने की उत्कट कामना करती हैं। व्यक्तिवादी भावना की प्रधानता के कारण अमृता ने आध्यात्मिक प्रेम को नपुंसक कहा है।

उनकी नारियों ने शारीरिक भोग की तृषा को शमित करने के लिए किसी प्रकार की सीमा को स्वीकारा नहीं है। अमृता प्रीतम के ऐसे सभी नारी–पात्रों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति मनोविज्ञान की ही देन है। उपन्यासों में मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण सामाजिक तत्वों का शनैः ह्रास होने लगता है और व्यक्तिवादी–भावना का विकास होने लगता है। ऐसे उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्ति साध्य हो जाता है। व्यक्तिवादी पात्र भोग और राग में विश्वास रखते हैं। अश्लीलता को स्वीकारने में भी वे संकोच नहीं करते। अमृता के नारी पात्रों में व्यक्तिवादी स्वच्छन्दता की भावना प्रबल है। इसी कारण इनकी नारियाँ साहसी हैं। वे नवीन स्थापनाएं स्थापित करती हैं।

सन्दर्भ संकेत

1.	जैनेन्द्र कुमार	– साहित्य का श्रेय और प्रेय	– पृ0सं0 –15
2.	शिव नारायण श्रीवास्तव	– हिन्दी उपन्यास	– पृ0सं0 –279
3.	इलाचन्द्र जोशी	– विवेचना	– पृ0सं0 –106
4.	इलाचन्द्र जोशी	– विवेचना	– पृ0सं0 –13
5.	इलाचन्द्र जोशी	– विवेचना	– पृ0सं0 –89
6.	नन्ददुलारे बाजपेयी	– आधुनिक हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान– लेख, साहित्य संदेश–अक्टूबर 1944	– पृ0सं0 –
7.	नन्द दुलारे बाजपेयी	– नया साहित्य, नए प्रश्न	– पृ0सं0–188
8.	सम्पादक–महेन्द्र, मक्खनलाल शर्मा	– हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और विवेचन	– पृ0सं0–157
9.	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय	– त्रिशंकु	– पृ0सं0 –28
10.	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय	– त्रिशंकु	– पृ0सं0 –88
11.	डॉ0 राजेश्वर गुरू	– हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, साहित्य सन्देश, अगस्त 1956	– पृ0सं0 –
12.	डॉ0 सुरेश सिन्हा	– हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास	– पृ0सं0 –43
13.	ओम अवस्थी	– प्रेमचन्द के नारी पात्र	– पृ0सं0 –13
14.	डॉ0 राम विनोद सिंह	– हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चरित्र	– पृ0सं0 –107

15. डॉ0 राम विनोद सिंह – प्रेमचंद का नारी चित्रण – पृ0सं0 –09
16. डॉ0 गीता लाल – हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास – पृ0सं0 –89
17. डॉ0 सुरेश सिन्हा – प्रेमचंद के नारी पात्र – पृ0सं0–07
18. ओम प्रकाश अवस्थी – हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण – पृ0सं0 –43
19. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी – प्रसाद के नारी पात्र – पृ0सं0 –52
20. डॉ0 देवेश ठाकुर – प्रसाद के नारी पात्र – पृ0सं0 –52
21. डॉ0 देवेश ठाकुर – आधुनिक भारत का इतिहास – पृ0सं0 –399
22. नीरा देशाई – वीमैन ऑफ इंडिया (लेखिका) – पृ0सं0 –32
23. विनोबा भावे – भूदान–गंगा भाग–8 तथा स्त्रीशक्ति – पृ0सं0 –108, 110
24. डॉ0 देवेश ठाकुर – प्रसाद के नारी चरित्र – पृ0सं0 –421, 422
25. डॉ0 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास – पृ0सं0 –219, 220
26. डॉ0 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास – पृ0सं0 –195, 196
27. भगवती प्रसाद बाजपेयी – निमंत्रण – पृ0सं0 –29
28. विनोबा भावे – भूदान गंगा–भाग 2 – पृ0सं0 –205
29. सत्यव्रत – सामाजिक विचारों का इतिहास – पृ0सं0 –470
30. डॉ0 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना – पृ0सं0 –281
31. प्रेमचन्द्र – कुछ विचार – पृ0सं0 –7

32.	डॉ0 सुरेश सिन्हा	– हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना	– पृ0सं0 – 45
33.	वृन्दावन लाल वर्मा	– कचनार	– पृ0सं0 –15
34.	प्रेमचंद	– साहित्य का उद्देश्य	– पृ0सं0 –18
35.	डॉ0 सुषमा धवन	– हिन्दी उपन्यास	– पृ0सं0 –13
36.	डॉ0 सुषमा धवन	– हिन्दी उपन्यास	– पृ0सं0 –91
37.	डॉ0 देवेश ठाकुर	– प्रसाद के नारी चरित्र	– पृ0सं0 –300
38.	डॉ0 देवेश ठाकुर	– प्रसाद के नारी चरित्र	– पृ0सं0 –539
39.	यशपाल	– चक्कर क्लब	– पृ0सं0 –18
40.	अज्ञेय शेखर	– शेखर, एक जीवनी, द्वितीय भाग	– पृ0सं0 –37
41.	राजेन्द्र यादव	– राजेन्द्र यादव के दो लघु उपन्यास	– पृ0सं0 –117
42.	श्री नेमिचन्द्र जैन	– अधूरे साक्षात्कार	– Pg. No.-132
43.	जसवन्त सिंह कंवल	– हाणी	– पृ0सं0 –111